ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

अनुभवप्रकाश प्रवचन

साधर्मी श्री दीपचन्दजी कासलीवाल द्वारा रचित
श्री अनुभवप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के उपलब्ध अक्षरशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

विक्रम संवत
2076

वीर संवत
2546

ई. सन
2020

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com पर शास्त्र भण्डार
गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचन में उपलब्ध है।

—: प्रकाशन :—
03-09-2020, प्रथम आश्विन कृष्ण १
क्षमावाणी महापर्व के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—
1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250   फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

प्रवर्तमान जिनशासन महावीर भगवान के नाम से सुप्रसिद्ध है। जिनशासन जयवन्त वर्तने में भगवान की दिव्यध्वनि से लेकर आचार्यों की परम्परा तथा कालक्रमानुसार उसमें हुए सम्यग्दृष्टि सत्पुरुषों का महत् योगदान है। सर्व सन्त धर्मात्माओं ने स्वयं की मौलिक शैली में सशक्त लेखनी में स्वानुभव को यत्किंचित् व्यक्त करके महान-महान उपकार किया है। स्वानुभवगम्य रत्नत्रयमयी मोक्षमार्ग निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा है, उसे लेखनी में उतारना वह कोई महान पुरुष ही कर सकता है।

'अनुभवप्रकाश' ग्रन्थ एक ग्रन्थ छोटा सा, परन्तु अनुभवपद्धति को, अनुभवरस को व्यक्त करनेवाला ग्रन्थ है। अनुभवप्रकाश ग्रन्थ के रचयिता श्री दीपचन्दजी कासलीवाल हैं। वे आमेर के रईश है। उनके जीवन से सम्बन्धित कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है परन्तु सद्भाग्यवश उनके द्वारा रचित ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं। अनुभवप्रकाश ग्रन्थ के अतिरिक्त उनकी अन्य कृतियाँ भी उतनी ही स्वानुभवरस से लवालव है। आत्मावलोकन, चिद्विलास, अध्यात्म पंच संग्रह, ज्ञानदर्पण, परमात्मपुराण, स्वरूपानन्द, गुणस्थानभेद, उपदेशरत्न छन्द, अध्यात्मपच्चीसी एवं भावदीपिका आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

अनुभवप्रकाश ग्रन्थ प्रयोगात्मक पद्धति का ग्रन्थ है। श्री दीपचन्दजी का मूल लेखन ढूँढ़ारी भाषा में है। तत्पश्चात् उसका गुजराती तथा हिन्दी में अनुवाद प्रसिद्ध हुए हैं। इस ग्रन्थ में उन्होंने आत्मा का स्वरूप, स्वरूप प्राप्ति का उपाय, साध्य-साधक अधिकार, अनुभव का वर्णन, समाधि वर्णन इत्यादि छोटे-छोटे भाववाही अधिकार लिखे हुए हैं। प्रत्येक पृष्ठ अनुभवरस से लबालब है। छोटे पेरेग्राफ में उन्होंने मुमुक्षु को सचोट मार्गदर्शन प्राप्त रहे, तत्प्रमाण लेखनी की है। दृष्टान्त रूप से लें तो उन्होंने मुमुक्षु की भूमिका में मोक्षमार्गपर्यन्त पहुँचने के लिये जो मुमुक्षु निज स्वरूप की खोज किस प्रकार करता है, उसका भाववाही वर्णन उन्होंने किया है। तत्पश्चात् छोटे-छोटे वचनों में उन्होंने विधि का विषय व्यक्त किया है। **मेरा ज्ञान, वह ही मैं हूँ; पर विकार, पर है। जहाँ-जहाँ जानपना, वहाँ-वहाँ मैं, ऐसा दृढ़भाव, वह सम्यक्त्व है।** आदि हृदयस्पर्शी वचन मुमुक्षुजीव को अचूक पथप्रकाश का कार्य कर जाते हैं। सरल भाषा में अनेक दृष्टान्त देकर सिद्धान्त समझाने की

उनकी पद्धति अति रसाल है। अध्यात्मरसिक जीवों को एक-एक वाक्य के चिन्तन में घण्टों निकल जाते हैं, ऐसी उनकी शैली है।

प्रवर्तमान जिनशासन के अजोड़ सन्त अध्यात्म सत्पुरुष भावी तीर्थाधिनाथ पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का साम्प्रत मुमुक्षु समाज पर अनन्य उपकार वर्त रहा है। समस्त ग्रन्थों में निहित अध्यात्मविद्या को उज्ज्वल करके जिनशासन को जयवन्त किया है। अनेक बार आप प्रवचन में फरमाते हैं, 'अभी महाविदेहक्षेत्र में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में सीमन्धरनाथ भगवान जो फरमा रहे हैं, वह अभी यहाँ कहा जा रहा है।' अहो! एक भावी के तीर्थंकर, दूसरे वर्तमान के तीर्थंकर की दिव्यध्वनि को प्रकाशित कर रहे हैं!! यहाँ पंचम काल को चतुर्थ काल में परिवर्तित करनेवाले कहान गुरुदेव के अविस्मरणीय उपकार शाश्वत्रूप से हृदयांकित रहो।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन प्राप्त करे कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप अनुभवप्रकाश ग्रन्थ पर अलग से उपलब्ध प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। अनुभवप्रकाश ग्रन्थ के संकलित प्रवचन भी पहले श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा गुजराती में तथा इसी ट्रस्ट द्वारा हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत दो प्रवचन बाद में प्राप्त हुए प्रवचन हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमलों सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। इन प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य (गुजराती भाषा में) पूजा इम्प्रेशन्स तथा श्रीमती वीणाबेन नन्दु, विलेपार्ला द्वारा किया गया है। प्रवचनों को मिलान करने का कार्य श्री सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त करे, इस भावना से इनका हिन्दी रूपान्तरण तथा सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। तदर्थ ट्रस्ट सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट की मुमुक्षुजनों से प्रार्थना है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हम तक पहुँचाने का कष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन www.vitragvani.com पर शास्त्र भण्डार में गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचनों में उपलब्ध हैं।

पाठकवर्ग प्रस्तुत प्रवचनों का अवश्य लाभ लेते हुए आत्मकल्याण को साधे, इसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	पुस्तक पृष्ठ	पृष्ठ क्रमांक
१	०२-०१-१९५३	पृष्ठ-४० से ४२	०१
२	१९-०१-१९५३	पृष्ठ-७१	२४

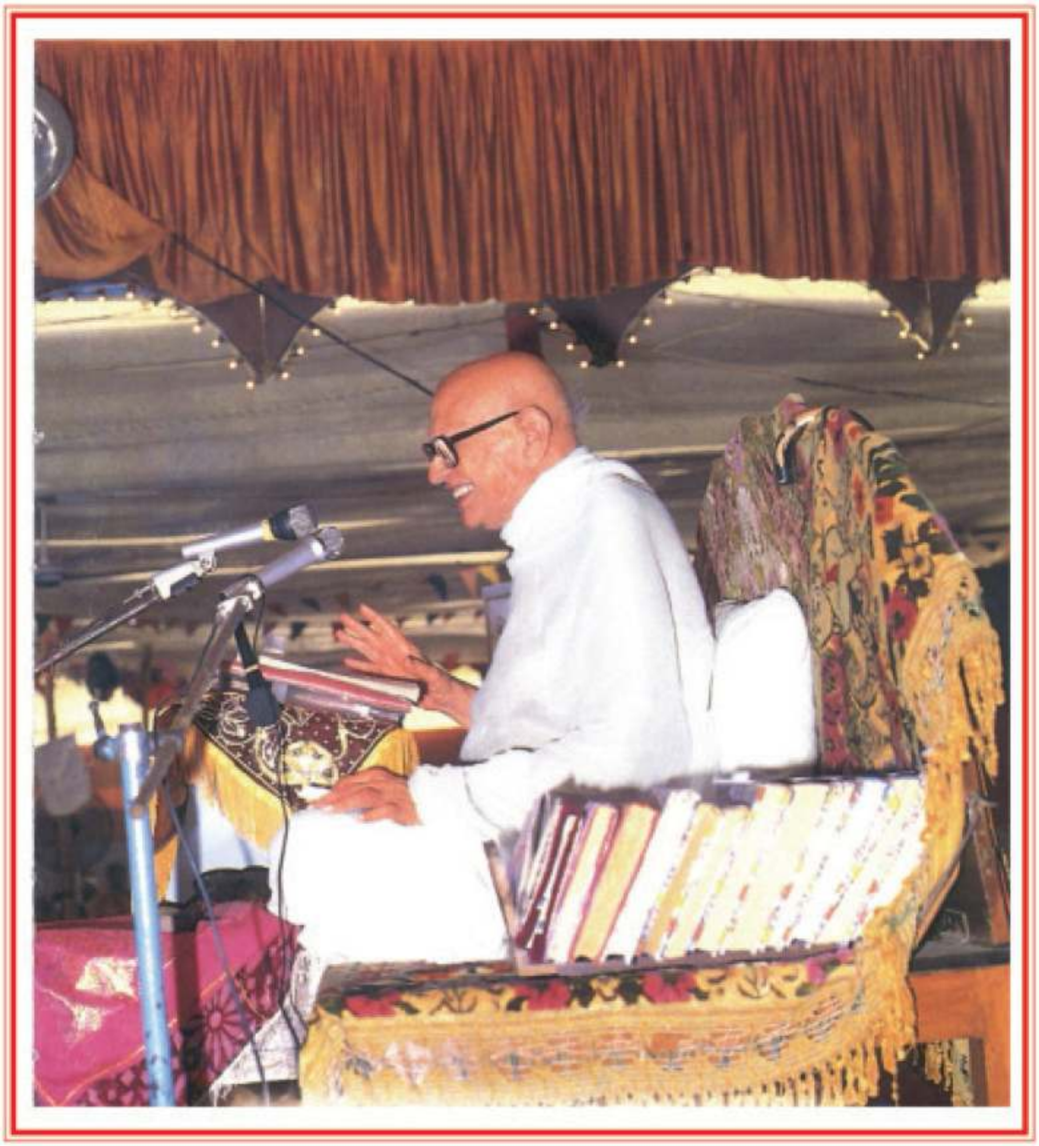

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध–विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का**

श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित

सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

साधर्मी श्री दीपचन्दजी कासलीवाल

यह ग्रन्थ के बारे में पूज्य गुरुदेवश्री के हृदयोद्गार उनके हस्ताक्षरों में

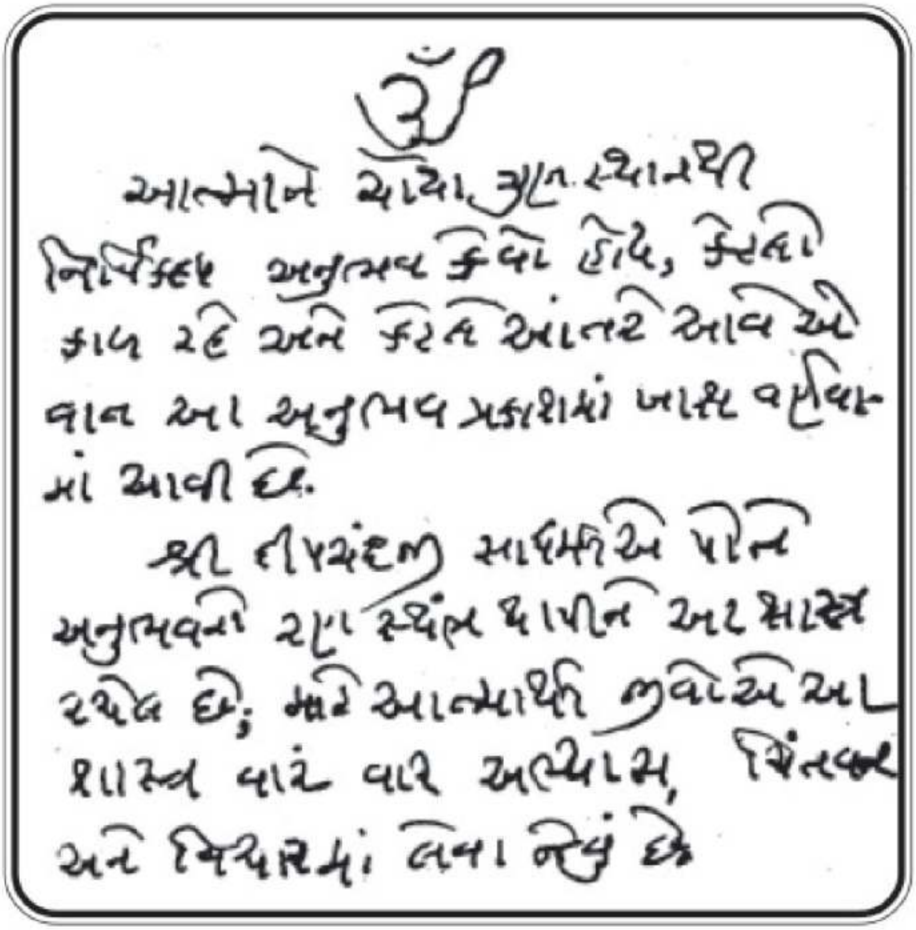
ॐ

આત્માને ચોથા ગુણસ્થાનથી
નિર્વિકલ્પ અનુભવ કેવો હોય, કેટલો
કાળ રહે અને કેટલે આંતરે આવે એ
વાત આ અનુભવ પ્રકાશમાં ખાસ વર્ણવ-
માં આવી છે.

શ્રી દીપચંદજી સાધર્મીએ પોતે
અનુભવનો રણસ્થંભ રોપીને આ શાસ્ત્ર
રચેલ છે; માટે આત્માર્થી જીવોએ આ
શાસ્ત્ર વારં વાર અભ્યાસ, ચિંતવન
અને વિચારમાં લેવા જેવું છે

आत्मा को चतुर्थ गुणस्थान से निर्विकल्प अनुभव कैसा होता है, कितने काल तक रहता है तथा कितने कालान्तर में आता है, यह बात यह अनुभवप्रकाश ग्रन्थ में खास लिखी गयी है।

श्री दीपचन्दजी साधर्मी ने स्वयं अनुभव का रणस्तम्भ स्थापकर यह शास्त्र की रचना की है। इसलिए आत्मार्थी जीवों को यह शास्त्र बार-बार अभ्यास, चिन्तवन और विचार में लेनेयोग्य है।

ॐ

परमात्मने नमः

अनुभवप्रकाश प्रवचन

साधर्मी श्री दीपचन्दजी कासलीवाल द्वारा रचित श्री अनुभवप्रकाश ग्रन्थ पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपलब्ध अक्षरशः प्रवचन

पौष कृष्ण २, शुक्रवार, दिनांक - २-१-१९५३, मूल ग्रन्थ, पृष्ठ-४० से ४२, प्रवचन - १

इसमें ४० पृष्ठ है न इसमें? यहाँ से फिर से लेते हैं। पेरेग्राफ से। ४० से फिर से लेते हैं। पूरा इसका सम्बन्ध है न।

यह 'अनुभवप्रकाश' ग्रन्थ है। अनुभवप्रकाश अर्थात् क्या? आत्मा जो अनादि का पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, हर्ष और शोक—ऐसे विकारभाव को अनुभव करता है, वह संसार है। उस विकारभाव रहित ज्ञानानन्द शुद्ध चिदानन्द आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति हूँ, ऐसा नित्यानन्द ध्रुव स्वभाव का अवलम्बन लेकर वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता का अनुभव करना, उसे अनुभवप्रकाश कहते हैं। उसे धर्म कहते हैं। और उसका नाम मोक्षमार्ग है। इससे यहाँ उपदेश करते हैं। यदि तुम्हें आत्मा का अनुभव करना हो;.... अनुभव कहो, धर्म कहो, मोक्षमार्ग कहो, मोक्ष के कारणरूप आत्मा की वीतरागी दशा कहो, सब एक ही है। यदि आत्मा का अनुभव करना हो, धर्म करना हो, शान्ति चाहिए हो, सुखी होना हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो शक्तिरूप से द्रव्य में है, उसे व्यक्त अर्थात् प्रगट करना हो तो हम कहते हैं, उस दृष्टि से अनुभव करो। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से अनुभव नहीं हो सकता। यह बात यहाँ चलती है।

... निहारो... हे भगवन्त! हे आत्मा! हे चिदानन्द! ऐसा सम्बोधन करते हैं। गुजराती में 'बराबर निहालो' ऐसा शब्द है न तुम्हारे? यह हिन्दी पढ़ा जाता है। यह चिदानन्द भगवान इस शरीर देवल में यह मिट्टी-धूल है, अजीव पुद्गल है, उसमें निकट निहारो। एक जरा सी सम्हाल करके देखो कि मैं यह कौन हूँ?

इस शरीर मन्दिर में यह चेतनदीपक शाश्वत है। इस शरीररूपी मन्दिर में इस चेतन का दीपक शाश्वत् है। इस श्लोक में से उठाया है। भाई! यह (समयसार की) १४वीं गाथा का (१२वाँ) श्लोक है न, उसमें यह शब्द है, उसमें से यह पूरा लिया है। समझ में आया? है न शाश्वता? इस शरीर मन्दिर में भगवान आत्मा चेतन जाननेवाला-देखनेवाला दीपक है। वह शाश्वत है, वह नित्य है, ध्रुव है, सदृश्य स्वभावी शाश्वत् रहनेवाली चीज़ है। उसे जरा बराबर निहारो, अन्दर देखो कि मेरा स्वरूप त्रिकाली कैसा रहा है। यह उसे देखना और अनुभव करना, इसका नाम धर्म है।

मन्दिर (शरीर) तो छूटता है,.... ध्यान रखना। शरीर तो छूटता है। **परन्तु शाश्वत रत्नदीपक ज्यों का त्यों रहता है।** भगवान आत्मा तो ज्ञानमूर्ति है। जैसे क्षार की डली नमक, जैसे सफेदी की डली कलई; उसी प्रकार आत्मा तो ज्ञान और आनन्द की डली है। ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। उसकी पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था में जो पुण्य-पाप और भ्रान्ति है, वह तो एक समय का विकार है। मूल नित्य स्वभाव की दृष्टि करो तो उसमें विकार या भ्रम है नहीं। उस स्वभाव का अनुभव करने से शाश्वत् **रत्नदीपक ज्यों का त्यों रहता है।** देहदेवल में कार्मणशरीर, तैजसशरीर और औदारिक—ये तीन जड़ मिट्टी। उसमें भगवान आत्मा चेतन दीपक है। उसे पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया-दान, भक्ति-व्रत, पूजा के परिणाम सब विकार है। सब विकार है। अधर्म है। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ, वासना ये दोनों परिणाम, वे अधर्म और विकार हैं। उनसे रहित चिदानन्द चैतन्य दीपक शाश्वत् ऐसा का ऐसा पड़ा है। उसकी दृष्टि करे, उसकी रुचि करे, उसका ज्ञान करे और उसका अनुभव करो। **ज्यों का त्यों रहता है।**

व्यवहार में तुम नट की भाँति अनेक स्वांग धारण करते हो,.... भले कहते हैं

कि चिदानन्द मूर्ति, ज्ञान और आनन्द तो नित्य-नित्य कायम वह का वह है। परन्तु व्यवहार से तुम अनेक स्वाँग अर्थात् वेश। **नट की भाँति धरते हो....** नाटकी जैसे बहुत स्वाँग को धरे, तथापि नट तो नट है। नट ने चाहे जितने वेश पहने हों, अंग्रेज के, गरीब के। घड़ीक में अंग्रेज हो-यूरोपियन, घड़ीक में बहुरूपिया, घड़ीक में रंक हो, घड़ीक में स्त्री हो, घड़ीक में बालक हो जाये, घड़ीक में कुत्ता हो जाये, घड़ीक में बैल जो जाये। बहुरूपिया भाण्ड ऐसे वेश धारण करता है। परन्तु वह तो नट का नट है।

उसी प्रकार शाश्वत चिदानन्द भगवान चाहे जितने वेश और भेष शरीर, वाणी और कर्म तथा पुण्य और पाप के परिणाम कृत्रिम क्षणिक किये परन्तु वस्तु नित्यानन्द तो चिदानन्द वह का वह है। उसमें कोई कमी, हीनता हुई नहीं। यहाँ तक आया था, अब।

ज्यों का त्यों रहता है। यह तो दृष्टान्त है। नट चाहे जितने वेश धारण करे, नट तो नट है। नट तो समझता है कि मैं नट हूँ। यह वेश कोई मैं नट हूँ नहीं। यह अनादि के शरीर, कर्म, वाणी, मन, पुण्य-पाप के विकल्प का वेश पहना, अज्ञानी मानकर बैठता है कि इस स्वरूप मैं हूँ। और नट अलग-अलग वेश पहने, वह नहीं मानता कि नट अलग-अलग वेश में घुस गया।

यह चैतन्य नट शाश्वत् ज्ञायक नित्यानन्द ध्रुव, उसकी पर्याय में—अवस्था में विकार और शरीर आदि के संयोग अनेक-अनेक हो गये। तथापि उस वेशमय चैतन्य रत्न नित्यानन्द वह हुआ नहीं है। वह तो नित्य ध्रुव स्वरूप जो है, वैसा का वैसा है। ऐसे ध्रुव स्वरूप की दृष्टि करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसे जैनशासन का देखनेवाला कहते हैं। समझ में आया? नित्य चिदानन्द चैतन्य रत्न। जैसे रत्न के दीपक को चाहे जैसे पवन के झपट्टे लगें परन्तु पवन के दीपक की झलक कहीं ऐसे लचक नहीं खाती। झलक में लचक नहीं खाती। अग्नि का दीपक हो, ऐसे उसे तो पवन लगे, लौ ऐसे मचक खा जाये। रत्न का दीपक चाहे जैसे पवन के झपट्टे हों, रत्न पाँच लाख का, दस लाख का, पच्चीस लाख का (हो), उसका जो क्षेत्र है, उसे पवन के झपट्टे से कुछ लचक, मचक खाकर कुम्हलाकर शिथिल नहीं पड़ता। उसी प्रकार चैतन्य नित्यानन्द एक समय की पर्याय को गौण कर दे। नित्यानन्दस्वभाव को देख तो चैतन्य रत्न

सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का आश्रय, धर्म का जो आश्रय द्रव्य, ऐसा का ऐसा रहा हुआ है। कहो, समझ में आया?

जिस प्रकार उस नट ने बहुत वेश पहने **उसी प्रकार बद्ध एवं स्पृष्टभाव कर्म का है**। जरा अब बात आयी है। समयसार की १४वीं गाथा है, उसका यह स्पष्टीकरण है। संक्षिप्त शब्दों में।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥१४॥

यह समयसार की १४वीं गाथा है। और १५वीं भी इसी प्रकार की है।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥

यह १५वीं गाथा। यह १४ और १५ का यह संक्षिप्त शब्दों में सार है। क्या सार है? हे भगवन्त! हे चिदानन्द! ऐसा जीव को सम्बोधन करते हैं। हे ज्ञानानन्दमूर्ति! तू तो ज्ञान और आनन्द का कन्द है। तेरी पर्याय में—अवस्था में जितना विकार संसार पुण्य-पाप का ज्ञात होता है, वह कहीं वास्तविक तेरा स्वरूप नहीं। शरीर, कर्म, जड़, वह तो तेरा स्वरूप है ही नहीं। इसलिए हे चिदानन्द! तुझे सम्यग्दर्शन अथवा जैनशासन देखना हो, जैनशासन ने कहा, उसका मर्म खोजना हो, वीतराग के हृदय और उसका मर्म देखना हो तो हम कहते हैं, वैसा देख।

बद्ध एवं स्पृष्टभाव कर्म का है,.... जो आत्मा में कुछ विकल्प दया, दान, काम, क्रोध, भ्रान्ति, अज्ञान, राग, द्वेष, शुभ-अशुभ, शरीर, कर्म सब स्पृष्ट भाव कर्म का है। वह तेरी चीज़ नहीं है। समझ में आया? जैसे उस नट ने वेश पहना, उस वेश के वस्त्र नट सब रखता है, परन्तु जब घर में खाने बैठता है, तब वे वस्त्र पहनकर नहीं खाता। वे नट के वस्त्र पहने, तब नट के हों। वे दूसरे पहने हों, वह न रहे। इसी प्रकार हे चिदानन्द! तेरा अनुभव.... भाई! खाना अर्थात् यहाँ तो यह लिया है न। यह अनुभवप्रकाश है न। आत्मा के आनन्द का भोजन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे अनुभव करना हो तो, हे नट! यह काम, क्रोध, दया, दान, पुण्य, पाप, व्रत, अव्रत सब विकार जहर है। और

वह कर्म का स्पृष्टभाव है। कर्म के निमित्त से उपाधिभाव हुआ तुझमें है, वह तेरा मूल स्वरूप नहीं है।

एवं स्पृष्टभाव कर्म का है,.... किसकी भाँति ? अब छह बोल घटित करेंगे, छह बोल। वहाँ पाँच बोल लिये हैं। यहाँ छह को (लेकर) अधिक स्पष्ट किया है। **तथापि (जीवद्रव्य) कमलपत्र की भाँति कर्म से नहीं बँधता, स्पर्शित नहीं होता।** देखो! क्या कहा ? जैसे कमलिनी का पत्र है कमलिनी का, वह पानी में रहता है परन्तु पानी से बँधा हुआ नहीं है। अर्थात् कि पानी और कमल को श्लेष, श्लेष—एकमेक सम्बन्ध हुआ नहीं और उसका स्पर्श कमलिनी का पत्ता पानी के साथ संयोगमात्र भी नहीं है। उस पानी का कमल वह पानी को स्पर्शा नहीं है। समझ में आया ? वह स्पर्शा नहीं। चीज़ भिन्न है, वह एक-दूसरे को स्पर्श नहीं सकते। सुनो! यहाँ उतरता है, रेकॉर्डिंग उतरता है। समझ में आया ?

आत्मा... यहाँ कमलिनी का न्याय है कि कमलिनी का पत्र, कमलिनी पत्र की भाँति। यह दृष्टान्त है। कमलिनी का पत्र पानी से स्पर्शित नहीं और बँधा हुआ भी नहीं। पानी से निर्लेप कमल रहता है। पानी और कमल दोनों भिन्न चीज़ है। पानी और कमल के बीच अभाव है। पानी और कमल के बीच अभाव है। अभाव न हो तो पृथक् दो पदार्थ रह नहीं सकते। इसलिए अभाव है। अत: पानी उस कमल को स्पर्शा नहीं और श्लेष सम्बन्धरूप से बन्धन भी नहीं हुआ। यह न्याय।

अब सिद्धान्त। **कर्म से नहीं बँधता, स्पर्शित नहीं होता।** इसी प्रकार चिदानन्द आत्मा कमल की भाँति इस कर्मरूपी जल से बँधा हुआ नहीं है। अर्थात् कि श्लेष सम्बन्ध। जैसे गोंद और लकड़ी के साथ कागज चिपकाना हो तो गोंद बीच में डालते हैं और श्लेष सम्बन्ध होता है। उसी प्रकार भगवान अखण्ड नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप को और कर्म को संश्लेष सम्बन्ध भी नहीं है। पानी के कमल को और पानी को श्लेष सम्बन्ध एकमेक नहीं है। उसी प्रकार आत्मा और कर्म और नोकर्म, शरीर एकमेक नहीं है। श्लेष सम्बन्ध नहीं है, ऐसी दृष्टि कर। यह जैनशासन। ज्ञानानन्द नित्यानन्द आत्मा हूँ। यह स्पृष्टभाव सब कर्म का है। मेरे स्वभाव में उस कर्म का बन्ध भी नहीं और स्पर्श (नहीं), आत्मा कर्म को स्पर्शा नहीं। ओहोहो!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तीन काल में स्पर्शे, ऐसा नहीं हो सकता। ध्यान रखना। एक वस्तु दूसरी वस्तु को स्पर्शे, ऐसा नहीं होता। क्योंकि एक-दूसरे में एक-दूसरे का अभाव है। अभाव के स्पर्श कैसे हो? वह तो भाव हो जाता है। आत्मा कर्म को स्पर्शा नहीं। दृष्टि कर ध्रुव पर। सम्यग्दृष्टि का ध्येय, धर्मी का ध्येय, जैनशासन के मर्म का ध्येय कि कमल जैसे पानी को स्पर्शा नहीं और बँधा हुआ नहीं; उसी प्रकार भगवान आत्मा नित्य चैतन्य शाश्वत जो दीपक कहा। नित्यानन्द ध्रुव जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, वह चैतन्य ध्रुव आत्मा कर्म से श्लेष अर्थात् एकरूप हुआ नहीं। उसे संयोग भी नहीं। भाई! कर्म को और आत्मा को संयोग भी नहीं। ध्यान रखना। क्योंकि संयोग निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का वर्तमान व्यवहार बताता है। और स्वभाव दृष्टि में कर्म और राग को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, वह पर्यायबुद्धि व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ करके, भूतार्थ चिदानन्द नित्यानन्द ध्रुव हूँ, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। इसलिए सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा और कर्म से श्लेष अर्थात् एकमेक भी हुआ नहीं और आत्मा कर्म को छुआ और स्पर्शा भी नहीं। समझ में आया?

देखो, दो बोल हुए। **कर्म से नहीं बँधता, स्पर्शित नहीं होता।** किस दृष्टि से? कर्म का बन्ध और स्पर्श तो व्यवहारनय से है। व्यवहारनय से है। क्योंकि आत्मा में राग हो, वह स्वतन्त्र अपराध और उसमें कर्म जड़ का निमित्त है। परन्तु वह तो वर्तमान भूतार्थ व्यवहारनय का भूतार्थ विषय है। वर्तमान उसे जानता है। अब धर्मी जीव को वह वर्तमान पर्यायबुद्धि छुड़ाते हैं और ध्रुव चिदानन्द नित्यानन्द की बुद्धि करना, वह समकित है। समझ में आया? समझने जैसी बात है, भाई! यह तो पूरा जैनशासन का मर्म आया है। बहुत से पूछते हैं, उन जुगलकिशोर को पूछते हैं कि यह जैनशासन इस १५वीं गाथा में आ गया, उसका कारण क्या? प्रश्न आया था अखबार में अभी कि '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' इसका कारण क्या? जैनशासन बस यह १५वीं गाथा में एक में आ गया?

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

यह १५वीं गाथा। तो यहाँ कहते हैं, भगवान चिदानन्द शान्त हो। यदि तुझे सम्यग्दर्शन चाहिए हो, सम्यग्ज्ञान चाहिए हो, चैतन्य रतन दीपक जैसा है, वैसा यह तुझे उसका पता प्राप्त करना हो तो एक बार निर्णय कर कि कर्म का, शरीर का, मेरी वर्तमान पर्याय क्षणिक अवस्था कृत्रिम, उसके साथ सम्बन्ध है, व्यवहारनय से, वर्तमान नय से। वह पर्यायबुद्धि का विषय है, वह व्यवहारनय का विषय है। उसका ज्ञान करने के लिये बराबर है। अब आदरणीय नहीं। उसे व्यवहाररूप से व्यवहार यदि यथार्थ तुझे करना हो तो उस कर्म से आत्मा बँधा हुआ नहीं, स्पर्शित नहीं। ऐसी चिदानन्द की ध्रुव शक्ति है, उसकी दृष्टि कर तो विद्यमान त्रिकाल भूतार्थ सम्यग्दर्शन के ध्येय में तुझे ख्याल में आयेगा। यह उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसका नाम जैनशासन का मर्म कहते हैं। समझ में आया?

देखो! यहाँ बात बहुत संक्षिप्त कही है। १४वीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने स्पष्ट किया है और उसका विस्तार भगवान अमृतचन्द्राचार्य मुनि ने भावलिंगी सन्त जंगल में विचरते थे, आनन्दकन्द में, उन्होंने विशेष स्पष्ट कर दिया है। यहाँ उसका सार लेकर दीपचन्दजी ने अल्प सार लेकर भाव रख दिया है। बात समझ में आती है? कि **कमलिनीपत्र की भाँति....** भगवान आत्मा शाश्वत दीपक नित्यानन्द। सम्यग्दृष्टि का ध्येय द्रव्यदृष्टि है। द्रव्य, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। पर्याय नहीं। पर्याय का ज्ञान करे। ज्ञान में दोनों विषय आते हैं। त्रिकाल ध्रुव कहो, वर्तमान विकार और विकार कर्म को निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध। कर्म से विकार नहीं और विकार से कर्म नहीं। निमित्त-नैमित्तिक स्वतन्त्र—पृथक् भेद करने के लिये.... परन्तु वह व्यवहारनय का वर्तमान पर्याय का ज्ञान करने का विषय है। परन्तु उस वर्तमान पर्याय का व्यवहार का यथार्थ ज्ञान कब होता है? कि उसका लक्ष्य छोड़कर मैं शाश्वत् आत्मा नित्य ध्रुव, कर्म से श्लेषरूप से बन्धन नहीं और कर्म का संयोग और स्पर्शमात्र मुझमें नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि सन्मुख करना, उसका नाम निश्चयनय का, शुद्धनय का विषय कहा जाता है। यह उसका नाम सम्यग्दर्शन का विषय कहो, शुद्धनय का विषय कहो, निश्चयनय का विषय कहो। कहो, समझ में आया?

नहीं बँधता, स्पर्शित नहीं होता। यह बोल द्रव्य का लिया, भाई! ध्यान रखना।

इसमें चार बोल उतरेंगे। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव तथा पाँचवाँ अनुभव की बात के लिये पाँचवाँ बोल रखेंगे। क्या कहते हैं? चार बोल है या नहीं? वस्तु में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। ध्यान रखना, जरा विषय सूक्ष्म है। तो यह एक द्रव्य की बात की। चैतन्यद्रव्य ध्रुव ज्ञायक, वह कर्म से श्लेषरूप से बन्धन नहीं और उसे संयोगमात्र स्पर्श भी नहीं। क्योंकि व्यवहार का विषय उड़ाकर द्रव्य त्रिकाली एकरूप है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। इसलिए कहते हैं कि चैतन्य शाश्वत् इस देहमन्दिर में भिन्न है, उसकी तू दृष्टि कर तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। एक बात की।

अब क्षेत्र की बात करते हैं। ध्यान रखना। **जिस प्रकार मिट्टी अन्य-अन्य भाव (आकार) धारण करने पर भी एक है।** क्या कहते हैं? मिट्टी है न? मिट्टी। उसमें से घड़ा, सकोरा, रामपात्र। सकोरा को रामपात्र कहते हैं न? मिट्टी है न, मिट्टी? उसमें से घड़ा इत्यादि-इत्यादि उसके बर्तन होते हैं न? आकार-आकार। मिट्टी में से अलग-अलग आकार होते हैं न? परन्तु कहते हैं कि **अन्य-अन्य भाव (आकार) धारण करने पर भी एक है।** मिट्टीरूप से एक है। माटी समझे न? मिट्टी के चाहे जितने बर्तन हों। ध्यान रखना। बर्तन, आकार, तथापि मिट्टी, मिट्टीरूप से एक है। वह एक-एक बर्तन की एक-एक आकृति में पूरी मिट्टी प्रविष्ट नहीं हो गयी। मिट्टीरूप से सामान्यरूप से एक है। देखो! यह क्षेत्र की अपेक्षा से बात है, भाई! क्या क्षेत्र से? मिट्टी जो है धूल-धूल पिण्ड उसका। उसके बर्तन चाहे जितने २५-५० हों। वे अनेकरूप मिट्टी के बर्तन के आकार होने पर भी मिट्टी तो एकरूप है। मिट्टी अनेकरूप नहीं हुई। उसकी पर्याय की आकृति की व्यंजन की पर्यायें अनेकरूप हुई हैं। द्रव्यरूप से मिट्टी तो आकार उसका एकरूप रहा है। **अन्य-अन्य भाव (आकार) धारण करने पर भी एक है।**

उसी प्रकार (जीवद्रव्य) अन्य-अन्य पर्याय धारण करने पर भी एक है। ध्यान रखना। आत्मभगवान यह व्यंजनपर्याय अर्थात् असंख्य प्रदेश की आकृति की वर्तमान पर्याय। शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं। आत्मा मनुष्य के देह प्रमाण असंख्य प्रदेशी आकृति व्यंजनपर्यायरूप परिणमा है। और देवरूप से परिणमे, मनुष्यरूप से परिणमे, ऐसे सिद्धरूप से परिणमे अथवा वह अनेक संसार के भवों में जहाँ-जहाँ भव करे,

वहाँ-वहाँ आत्मा के प्रदेशत्वगुण के कारण उसकी वर्तमान पर्याय की व्यंजन अर्थात् आकृति की पर्याय अनेक होने पर भी वह आत्मा असंख्य प्रदेशी एकरूप है। क्या कहा, समझ में आया? मुनिमजी! समझ में आता है यह? कठिन बात भाई, सूक्ष्म!

यह सम्यग्दर्शन का विषय चलता है। पहला तो द्रव्य को सम्यग्दर्शन का विषय कहा। अब क्षेत्र से अभेद वर्णन करते हैं। मिट्टी के चाहे जितने बर्तन हुए, परन्तु मिट्टी तो व्यंजनपर्याय की एक भी पर्यायरूप हुई ही नहीं। वह तो मिट्टी, मिट्टी रही है। उसी प्रकार भगवान असंख्य प्रदेशी चिद्घन, असंख्य प्रदेशी उसकी आकृति के क्षेत्र की पर्याय समय-समय में भिन्न-भिन्न होने पर भी वह आत्मा के असंख्य प्रदेशरूप द्रव्य, वह एकरूप रहा है। क्षेत्र की व्यंजनपर्यायें अनेक होने पर भी वस्तु तो एकरूप रही है। वह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? हरखचन्दभाई!

वापस व्यंजनपर्याय है, हों! कोई उसे उड़ावे तो मूढ़ है और वह व्यंजन अर्थात् आकृति समय-समय की स्वतन्त्र जीव की पर्याय में होती है। जड़ नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं। जैसे पानी में, पानी का तपेला हो और वह पानी ऐसे-ऐसे आकार से होता है, वह पानी का अपना आकार है। ऐसा पानी का आकार तपेले के कारण नहीं, बर्तन के कारण नहीं। वह पानी की वर्तमान व्यंजनपर्याय का स्वरूप है। उसी प्रकार यह चैतन्य शरीर के बर्तन प्रमाण नारकी, देव, पशु, मनुष्य जैसे छोटे-बड़े पतले मोटे, उसके प्रमाण में आकृति होती है। रूपी आकृति। उसकी यहाँ। अपने प्रदेशत्वगुण के कारण समय-समय की जो आकृति व्यंजनपर्यायरूप होती है, वह अनेक व्यंजनरूप पर्याय होने पर भी है अवश्य, परन्तु वर्तमान व्यंजनपर्याय, वर्तमान पर्याय और व्यवहारनय का विषय है। उसे जानकर, उसे आदरनेयोग्य नहीं है। असंख्य प्रदेशी सम्यग्दर्शन का विषय सामान्य द्रव्य है। इसलिए अनेक व्यंजनपर्याय होने पर भी भगवान आत्मा एकरूप रहा है। वह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया?

देखो! पहले में ऐसा कहा था कि कर्म से बँधा हुआ स्पर्श व्यवहारनय से तो है, हों! व्यवहारनय अर्थात् वर्तमान पर्याय में राग और कर्म का सम्बन्ध है। परन्तु वह व्यवहारनय का विषय आदरणीय नहीं है, अभूतार्थ है।

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो ॥११॥

यह ११वीं गाथा समयसार की। व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार है, वह सब अभूतार्थ है। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' सर्वज्ञों ने भूतार्थ के आश्रय से शुद्धनय कहा है। और भूतार्थ के आश्रय से-त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से जो दृष्टि करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। तो दो बात ली। कर्म का बद्ध और स्पृष्टभाव एक समयमात्र है, इतना भूतार्थ व्यवहारनय से है। निश्चय की दृष्टि करने पर, उसे भूतार्थ कहा था, वह निश्चय से अभूतार्थ है। ऐसी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है।

इसी प्रकार आत्मा के असंख्य प्रदेश की आकृति समय-समय में बदला करती है। यहाँ भी बदला करती है। ऐसे शरीर हो संकोच-विकास, वह जीव की पर्याय का धर्म है। परन्तु उसकी पर्याय का धर्म है। त्रिकाल स्वभाव का धर्म नहीं। वह पर्याय की संकोच-विकास आकृति व्यंजनपर्याय व्यवहारनय से है। है, उसे भ्रम कह दे कि है ही नहीं, वह भी मिथ्या है। और असंख्य प्रदेश की व्यंजनपर्याय के प्रत्येक भव की आकृति हुई, ऐसी समय की पर्याय, उसका आश्रय करके धर्म करना चाहे तो धर्म नहीं होता। धर्म तो असंख्य प्रदेशी पर्याय की भिन्न-भिन्न आकृति को अभूतार्थ गिनकर और एकरूप असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा एकरूप रहा हूँ, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? जरा विषय जैनशासन का मर्म और मक्खन का विषय है यह। समझ में आया?

उसी प्रकार अन्य-अन्य पर्याय धारण करने पर भी एक है। दो बात हो गयी। पहली बात तो द्रव्य की थी। दूसरी यह क्षेत्र की। भाई! पहला, द्रव्य है, वह बद्धस्पृष्ट नहीं। दूसरा, क्षेत्र आत्मा का है तो अनेकरूप पर्याय होने पर भी द्रव्यदृष्टि से एकरूप रहा है। द्रव्यदृष्टि से अर्थात् सम्यग्दर्शन के ध्येय दृष्टि से। वर्तमान पर्याय होने पर भी अभूतार्थ है। है, तथापि अभूतार्थ। किस प्रकार? स्वभाव की एकरूप दृष्टि करने के लिये।

अब तीसरी बात। अब काल आया। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। ऐसे चार बोल उतारे हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। अद्भुत समयसार की रचना चौदह पूर्व और बारह अंग के मक्खन इसमें दोहन कर डाले हैं।

तीसरा—काल। क्या काल? स्वकाल। अब स्वकाल अर्थात् क्या? पहला दृष्टान्त। **समुद्र तरंगों द्वारा वृद्धि-हानि करता है,....** समुद्र उसकी तरंगें और लहरों से वृद्धि-हानि करे, यह बराबर है। परन्तु **समुद्रपने से....** समुद्रपने के एकरूप भाव से **निश्चल है;....** समुद्र तो समुद्र ही है। समुद्र तो समुद्र के भावरूप—ध्रुवरूप सदृश्य तो एकरूप है। **तरंगों द्वारा वृद्धि-हानि करता है, तथापि समुद्रपने से....** समुद्रत्व—समुद्रपना। वह समुद्रपना निश्चल एकरूप है। उसकी तरंगों के कारण अनेकपना ज्ञात होता है, वृद्धि-हानि ज्ञात होते हैं। यह दृष्टान्त है।

अब सिद्धान्त। भगवान आत्मा.... उसकी पर्याय के स्वकाल के वर्तमान वर्तना, जैसे कालद्रव्य का लक्षण है, वैसे प्रत्येक द्रव्य का स्वकाल उसकी पर्याय में वर्तना, वह वर्तना द्रव्य का लक्षण है, काल (भेद का)। जैसे काल नाम के पदार्थ का वर्तना लक्षण है, उसी प्रकार छहों द्रव्य की वर्तमान पर्याय अपनी अपने से वर्तती है, वह द्रव्य का स्वकाल कहलाता है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में से यह तीसरा बोल चलता है। समझ में आया? कहते हैं कि समुद्र की तरंग की वृद्धि-हानि करे, **तथापि समुद्रपने से निश्चल है,....** यह दृष्टान्त। इसका सिद्धान्त।

भगवान आत्मा स्वकाल में वर्तते हुए विभाव से वृद्धि-हानि करे। पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया-दान ऐसा विकल्प उसके स्वकाल में, उसकी वर्तमान पर्याय में उस जाति की वृद्धि-हानि (होती है)। भाई! यहाँ विभाव लिया है। वहाँ अगुरुलघु लिया है। समझ में आया? समय-समय की पर्याय में अपने काल में अपने कारण से पुण्य-पाप, दया-दान, हीनता-न्यूनता के असंख्य प्रकार शुभ के और असंख्य प्रकार अशुभ के, उनकी वृद्धि-हानि उनके स्वकाल के कारण जीव का स्वकाल। पहले जीवद्रव्य लिया था, पश्चात् अखण्ड असंख्य प्रदेशी क्षेत्र लिया। यह उसका स्वकाल लेते हैं कि उसके स्वकाल में विभाव से वृद्धि-हानि करे। वस्तु नित्य अचल है, परन्तु काल से अन्तर में देखो तो वस्तु तो एकरूप विराजती है। यह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया?

स्वकाल में पुण्य और पाप, दया और दान, काम और क्रोध (लिये)। उस क्षेत्र में व्यंजनपर्याय थी। भाई! इसमें अर्थपर्याय की व्याख्या है। इस बोल में अर्थपर्याय की

व्याख्या है। क्षेत्र में उसकी आकृति पलटती थी, तथापि असंख्य प्रदेश से एकरूप है। केवल(ज्ञान) पावे तो असंख्य प्रदेश हैं। निगोद में जाये तो असंख्य (प्रदेश)। असंख्य प्रदेशी पिण्ड का कभी न्यूनाधिक नहीं हुआ। उसकी संकोच-विकास की वर्तमान पर्याय में फेरफार हुआ, वह व्यवहारनय के विषय में जाता है। है अवश्य। परन्तु स्वभाव की एक दृष्टि करने में यह अनेकपना सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। एकपना, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। इसी प्रकार काल में समुद्र की अनेक तरंगें होने पर भी समुद्रत्व के भाव से एक है, निश्चल है। उसी प्रकार भगवान आत्मा की पर्यायों के विभाव परिणाम की अनेक अपेक्षा देखो तो व्यवहार से वह वर्तमान स्वकाल में वर्तमान विषय व्यवहार का है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव उस व्यवहार को जानता है किन्तु आदर नहीं करता। ध्रुव का आदर करता है। मेरा एकरूप स्वभाव नित्यानन्द ध्रुव है। वह तो वस्तु नित्य अचल है। वस्तु में फेरफार हीनाधिकता नहीं है। काल के विभाव के प्रसंग में न्यूनाधिकता है। वस्तु स्वरूप से न्यूनाधिकता नहीं है। एकरूपी मेरा काल है। भाई! यह सामान्यपना द्रव्य का, सामान्यपना क्षेत्र का, सामान्यपना काल का, सामान्यपना भाव का—यह चार होकर सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? वस्तु नित्य अचल है। यह काल लिया।

अब भाव। चार वस्तु (—भेद) है न द्रव्य में? द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव। **सुवर्ण वानभेद होने पर भी अभेद है,....** समझ में आया? **उसी प्रकार कर्म से अनेक भेद होने पर... सुवर्ण वानभेद होने पर भी....** वानभेद, परन्तु अभेद इतना लेना। सोना वान भेद से भी अभेद। भाई! इतना लेना है। सोना है। पीलापन, चिकनापन, वजन के कारण भेद दिखते हैं, परन्तु वस्तु से अभेद है। सोना तो सोना ही है। क्या कहा? सोना वानभेद बस इतना। परन्तु वह अभेद। दो टुकड़े हैं इसमें। सोना पीलापन, चिकनापन, उसका वजन, इस अपेक्षा से भेद है। परन्तु सोनारूप से भेद नहीं है। वह तो उसके गुणभेद से भेद हुआ। वस्तुभेद से (भेद) नहीं। वस्तु तो एक ही है। सोना, वह सोना ही है। पीलापन, चिकनापन, वजन तो गुण के भेद के प्रकार तीन पड़े। वस्तु तीन नहीं। वस्तु तो असंख्य प्रदेशी एक ही है। सोना तो सोना ही है।

उसी प्रकार कर्म से अनेक भेद होने पर.... इसी प्रकार आत्मा में यह ज्ञान हूँ....

ध्यान रखना। अनन्त गुण है न, अनन्त गुण आत्मा में ? यह चित्त के संग से कहते हैं कि गुणभेद का विकल्प उठता है। भाई ! यह चित्त है यहाँ जड़, उसका राग से संग करे तो गुणभेद का विकल्प उठता है। मैं ज्ञान हूँ और मैं दर्शन हूँ और मैं आनन्द हूँ और मैं वीर्य हूँ और मैं अस्तित्व हूँ तथा वस्तुत्व हूँ। वस्तुदृष्टि से देखें तो सोना पीलापन, चिकनापन, वजन के गुणभेद से भेद। वस्तु अभेद, भाव से। उसी प्रकार आत्मा गुण के भेद से भेद, कर्म के निमित्त के लक्ष्य से, चित्त के लक्ष्य से, राग के विकल्प के भेद से (भेदरूप)। क्योंकि सोना ईंट है ऐसी पूरी। पीलापन, चिकनापन, वजन। उसमें से पीला अलग करो तो किस प्रकार निकलेगा ? वह तो उसके भेद में लक्ष्य में आता है। उसमें पीला भिन्न नहीं पड़ता। वह तो सोना, सोना ही है।

इसी प्रकार आत्मा में से एक गुण लक्ष्य में पृथक् करो कि ज्ञान। तो विकल्प उठा, वह तो वृत्ति उठी। यह दर्शन, यह आनन्द, अस्तित्व। गुण में गुणरूप से पृथक् हैं। उसमें कर्म उस कारण से किया है। यहाँ तो भाई ! कर्म का कारण अर्थात् पर व्यवहार के लक्ष्य में दृष्टि जाये तो गुणभेद का विकल्प उठता है। परन्तु सम्यग्दर्शन का विषय वस्तु अभेद है। गुण का भेद भी वस्तु में है नहीं। क्या कहा, समझ में आया ? सूक्ष्म बात है भाई जरा ! यह तो १४वीं गाथा में अपने सब आ गया है। इसका विस्तार हो गया है, लेखन हो गया है।

सोना वान भेद से रंग, स्पर्श आदि भेद से भेद दिखते हैं। सोना, सोनारूप से है। उसी प्रकार आत्मा गुणभेद से भावभेद। आत्मा है, उसके भाव अर्थात् गुण तो अनन्त हैं। उन अनन्त गुण से देखो तो अनन्त गुण व्यवहारनय का विषय है। अनन्त गुण का भेद, वह विकल्प और व्यवहार का विषय है। कर्म के निमित्त और निमित्त की ओर जाने से वह लक्ष्य उठता है। स्वभाव देखने पर, सम्यग्दर्शन का ध्येय देखने पर वह अभेद ध्रुव है। गुण के प्रदेश पृथक् नहीं हैं। ज्ञान के प्रदेश पृथक्, दर्शन के प्रदेश पृथक्, चारित्र के प्रदेश पृथक्, अस्तित्व के प्रदेश पृथक्, (ऐसा नहीं)। सबका क्षेत्र एक ही है। क्षेत्र भिन्न नहीं। इसलिए कहते हैं कि वह **कर्म से अनेक भेद होने पर भी वस्तु (चैतन्य) अभेद है**। समझ में आया ? यह किसकी बात चलती है ?

पर्याय में कर्म बन्ध का स्पर्श व्यवहारनय का विषय, द्रव्यदृष्टि के विषय में नहीं। पर्याय में अनेक प्रकार यह व्यंजनपर्याय की आकृति का विषय सही, वस्तुदृष्टि में नहीं। काल में विभाव के हानि-वृद्धि का भेद सही, स्वभाव में नहीं। गुण में अनेक गुण की दृष्टि देखने से अनेक गुण हैं, द्रव्यदृष्टि में सम्यग्दृष्टि के ध्येय में गुण का भेद होता नहीं। समझ में आया? वह गुणभेद नहीं, ऐसी दृष्टि करना सम्यग्दर्शन है और उसके साथ हुआ ज्ञान, वह गुणभेद नहीं ऐसा भी देखता है और गुणभेद है, ऐसा भी देखता है। यह प्रमाणज्ञान हुआ। परन्तु निश्चय ज्ञान हो तो व्यवहार का ज्ञान यथार्थ होकर प्रमाणज्ञान होता है। नहीं तो प्रमाणज्ञान नहीं होता। विषय जरा सूक्ष्म है। मुनीमजी! बाहर से नहीं मिले ऐसा यह। बाहर में सर्वत्र जहाँ-तहाँ भटकाय, ऐसी बातें वहाँ चलती हैं। यह करो और यह करो और यह करो। पूजा करो और भक्ति करो और यात्रा करो। अरे! भगवान! सुन तो सही एक बार।

तेरे तत्त्व को वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, वह तूने सुना नहीं। सर्वज्ञ की ध्वनि में जैनशासन का सार और मक्खन जो आया है कि जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है, जो सम्यग्दर्शन का आश्रय है कि जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन पर्याय है। वह कहीं गुण नहीं है। वह पर्याय पर्याय में से प्रगट नहीं होती, वह पर्याय राग में से प्रगट नहीं होती। सम्यग्दर्शन की पर्याय निमित्त में से प्रगट नहीं होती; सम्यग्दर्शन की पर्याय द्रव्य में से प्रगट होती है, इसलिए सम्यग्दर्शन का विषय द्रव्य है। समझ में आया?

इसलिए इस चौथे बोल में ऐसा कहा।....भाई! भाई! यह तो बहुत परिचय किये बिना समझ में आये ऐसा नहीं है। बाहर में तो सब वहाँ समझ में आये ऐसा है। चारों ओर यह सामायिक करो, प्रौषध करो, भक्ति करो और पूजा करो। यह ऐसे खाओ और ऐसे पीओ। बहुत तो दान दो करोड़पति को दो-पाँच लाख। अब तेरे करोड़ दे तो धर्म कब था वहाँ? मर जाये तो भी (नहीं)। धर्म तो आत्मा के माल में धर्म है। बाकी तेरे थोथा सब थोथा है।

आत्मा वस्तु यह जैनशासन का वर्णन चलता है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने दिव्यध्वनि

से कहा हुआ, उसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने संक्षिप्त शब्दों में वर्णन किया है। उससे भी संक्षिप्त में इन्होंने वापस वर्णन किया। वह देशभाषा में कहा सही न! देशभाषा में कहा। परन्तु उसका सार लेकर, उसका मक्खन लेकर (कहा)।

भगवान! विभाव... समझ में आया? विभाव की पर्याय अनेकरूप होने पर भी स्वभाव तो एकरूप है। गुणभेद से भेद, भावभेद से भेद है, हों! एक आत्मा में अनन्त गुण हैं। एक कम गुण माने तो भी मूढ़ है। और गुणभेद की दृष्टि रखे तो व्यवहारनय का विषय हो गया। निश्चय का विषय नहीं। गुण का अभेद असंख्यप्रदेशी द्रव्य एकाकार हूँ। वह सम्यग्दर्शन का ध्येय सामान्य है। सम्यग्दर्शन का विषय सामान्य है। पहले द्रव्य लिया था, वह सामान्य। फिर क्षेत्र लिया, वह सामान्य; फिर काल लिया, वह सामान्य; फिर भाव लिया, वह सामान्य। इस सम्यग्दर्शन के चतुष्टय विषय में अभेद कर दिया है। समझ में आया?

अनेक भेद होने पर भी.... नाना भेद समझे? नाना भेद कर्म से हुए होंगे, ऐसा नहीं। कर्म के ऊपर तेरा लक्ष्य जाता है। अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव स्वभाव हूँ। उसमें तू देख तो तुझे गुण अभेदरूप से भासित हों। सब अभेद एकाकार है। परन्तु यदि पर के ऊपर लक्ष्य गया तो विकल्प का उत्थान, वृत्ति का उत्थान होता है, शुभ की वृत्ति उठती है। तब चित्त के संग से यह विचार आया कि यह ज्ञान। वस्तु में से ज्ञान पृथक् नहीं पड़ता। वस्तु में से आनन्द पृथक् नहीं पड़ता। स्वर्ण की ईंट में से पीलापन पृथक् नहीं पड़ता। परन्तु पीला पृथक् लक्ष्य में लेना, वह वस्तु की भेदबुद्धि है। उसी प्रकार चैतन्य के अनन्त गुणों का वह अभेदस्वरूप है, उसमें से एक गुण को पृथक् करके विचार करना, वह चित्त के संग के राग का विकल्प है। वह व्यवहारनय का विषय है। उसे अभूतार्थ सिद्ध करके अनन्त गुण के पिण्डरूप एक तत्त्व को भूतार्थ सिद्ध करके उसे सम्यग्दर्शन का विषय कहा है। विषय जरा सूक्ष्म है। पण्डितजी! होता है तो सादी भाषा से, हों! परन्तु उसके ख्याल में जरा आना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी कोई पद्धति नहीं है। दूसरी कोई पद्धति नहीं है, दूसरा कोई प्रकार नहीं है। यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का एक ही पन्थ है, दूसरा कोई है नहीं। कहो, समझ में आया? यह चार दृष्टान्त हुए, भाई!

अब वहाँ पाँचवाँ दृष्टान्त दिया है पानी का। १४वीं गाथा में। इन्होंने जरा स्फटिक

–मणि का दिया है। वहाँ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने पाँचवाँ दृष्टान्त पानी का दिया है कि जैसे पानी अग्नि के निमित्त से वर्तमान उष्णता है, वह बराबर है, परन्तु यदि पानी का स्वभाव देखो तो उष्णता है ही नहीं। पानी का स्वभाव देखो तो शीतल ही है। वर्तमान पर्याय उष्ण स्वयं से हुई है, अग्नि से नहीं। अग्नि से नहीं। अग्नि और पानी में पृथक् अन्योन्य अभाव है। अग्नि के रजकण और पानी के रजकणों के बीच अन्योन्य अभाव है पर्याय के बीच। पर्याय के बीच। इसलिए किसी से कोई उष्ण होता नहीं। पानी स्वयं से उष्ण हुआ है, वहाँ अग्नि का निमित्त है। परन्तु उष्ण दृष्टि से देखो तो भूतार्थ है, है, परन्तु स्वभाव दृष्टि से देखो तो पानी शीतल ही है। गर्म है ही नहीं। यह दृष्टान्त। इन्होंने दूसरा दिया है। यहाँ पानी के बदले यह दिया है। ध्यान रखना।

स्फटिकमणि, पूरी से हरा, लाल भासित होता है.... स्फटिकमणि हरी और लाल संयोग के डंक से वह हरी और लाल भासित होती है। वह हरी–लाल होने की स्फटिक की वर्तमान योग्यता है। हरी–लाल होने की स्फटिक में वर्तमान योग्यता है। उसका निमित्त है, वह डंक लाल और हरा फूल या वस्त्र। स्फटिकमणि हरी अर्थात् लीलुं और लाल पुरी अर्थात् साथ में शंख, उससे भासित होती है। **स्वभाव तो श्वेत है।** परन्तु स्फटिक का स्वभाव देखो तो श्वेत है। वह हरी और पीली तो वर्तमान उपाधि है। उपाधि पर से नहीं हुई। वह पर्याय का धर्म है परन्तु पर्याय सब उड़ा देनी है। पर्यायबुद्धि नाहीं। समयसार में लिया है न भाई! समयसार नाटक में पर्यायबुद्धि नाहीं। समकिती को पर्यायबुद्धि नहीं हो सकती। अर्थात् कि वर्तमान पर्याय को जानता है, तथापि उसकी रुचि से आदर पर्याय का नहीं है। आदर तो ध्रुव नित्यानन्द का हो सकता है।

इसलिए कहते हैं कि जैसे पानी वर्तमान अग्नि के निमित्त से उष्ण है। उष्णता की योग्यता से, परन्तु उसका शाश्वत स्वभाव देखो तो शीतल है। यह एक बात। एक दृष्टान्त। दूसरा, उससे लगता दृष्टान्त इन्होंने यह दिया है कि स्फटिकमणि लाल और पीले वस्त्र का डंक लगाओ फूल का (लगाओ) तो वर्तमान उसकी योग्यता से लाल, हरी झांईं दिखती है परन्तु यदि स्फटिक का शाश्वत स्वभाव देखो तो अकेला सफेद ही है। पानी का शीतल है। इसका सफेद है।

पर वह पर है; निज चेतना में पर नहीं है। यह इसका सिद्धान्त। इसी प्रकार जितनी उष्णता अर्थात् काम, क्रोध, विकार का वेदन दिखता है, वह कर्मरूपी अग्नि और तू शीतल जल, वह पर्याय में दिखता है, वर्तमान अवस्था में काम, क्रोध, हर्ष, शोक का अनुभव। अब अनुभव की व्याख्या है भाई पाँचवें में। चार हुई—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अभेद वर्णन किये। अब ऐसे यदि अनुभव कर, ऐसा अनुभव किये बिना देखो तो पानी उष्ण लगता है अग्नि के निमित्त से। स्फटिकमणि लाल, हरी लगती है डंक के निमित्त से। उसी प्रकार तेरा आत्मा वर्तमान हर्ष-शोक का अनुभव, वह कर्म के निमित्त के लक्ष्य से दिखता है।

पर वह पर है;.... कर्म के निमित्त से पर, वह पर। पर का अनुभव दिखता है। काम, क्रोध, हर्ष, शोक, विकार, **निज चेतना में पर नहीं है।** परन्तु जो चेतना को स्वभाव देखे। जैसे पानी का शीतल स्वभाव है, स्फटिक का श्वेत स्वभाव है, उसी प्रकार तेरा स्वभाव देख अनुभव का देख (तो) चेतना में विकार का अनुभव है ही नहीं। हर्ष-शोक का अनुभव तो कृत्रिम वर्तमान व्यवहारनय का विषय है। वर्तमान पर्याय में होता है। स्वभावदृष्टि में वह अनुभव नहीं है। दलीचन्दभाई! समझ में आया? ऐसी बात देव ने कही है, गुरु ने कही हुई है, शास्त्र कहते हैं। इससे विरुद्ध बात कहे, वे देव नहीं, इससे विरुद्ध कहे वे गुरु नहीं, इससे विरुद्ध कहे वे शास्त्र नहीं। यह परीक्षा देव-गुरु-शास्त्र की करनी हो तो यह कसौटी है जैनशासन की। और आत्मा का स्वरूप ही इस प्रकार का एक-एक का है।

पर, वह पर है;.... कर्म के निमित्त के लक्ष्य से हर्ष-शोक का अनुभव तुझे होगा। चित्त के संग से.... यहाँ जड़ चित्त है आठ पांखुड़ी के आकार में यहाँ हृदय में। उस ओर देख तो हर्ष-शोक का अनुभव **पर, वह पर है....** उस पर से परपना विभाव का अनुभव होगा। **निज चेतना में पर नहीं है।** परन्तु चेतना ज्ञानानन्द के अनुभव में यह विकार का अनुभव है ही नहीं। समझ में आया? द्रव्यदृष्टि में सम्यग्दृष्टि के ध्येय में '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' महा सिद्धान्त समयसार की ११वीं गाथा का। भूतार्थ आत्मा चेतनास्वभाव एकरूप द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से-भाव से देखे और

अनुभव करे, एकरूप चेतना में देख तो हर्ष-शोक का अनुभव अभूतार्थ है। अ—नहीं, भूत—विद्यमान भाव। वह विद्यमान भाव नहीं। विद्यमान भाव तो ज्ञाता की ओर का अनुभव, वह अभेद हो, वह विद्यमान भाव है।

पर, वह पर है; निज चेतना में पर नहीं है। यह छह बोल कहे। छह बोल हुए न? खीमचन्दभाई! वहाँ आगे पण्डितजी ने—पण्डित जयचन्द्रजी ने पाँच बोल कहे हैं। अमृतचन्द्राचार्य में स्पष्टीकरण नहीं है, परन्तु ऐसा उतारा है। फिर पण्डित जयचन्द्रजी देशभाषा करके, उसमें पाँच बोल कहे हैं। इन्होंने पाँच में से उस बद्धस्पृष्ट के दो कहकर छह कहे हैं।

षड्भाव ऊपर-ऊपर ही रहते हैं;.... ये षट्भाव ऊपर-ऊपर रहते हैं, देखो! क्या कहा? कि आत्मा ध्रुव। यहाँ ध्रुव कहना है। ऊपर से उठाया कि **चेतन दीपक शाश्वत है।** मन्दिर तो छूटे परन्तु शाश्वत रत्न दीपक झलकता रहता है। यह उसकी पूरी व्याख्या की। शाश्वत नित्य ध्रुव स्वभाव, वह सम्यग्दृष्टि का विषय है। शाश्वत चैतन्यरत्न नित्यानन्द सदृश्य स्वभावी आत्मा। उसके अन्दर में षट्भाव ऊपर-ऊपर रहते हैं। यह कर्म का बन्ध और स्पर्श भी ऊपर है। परन्तु है अवश्य, हों! बिल्कुल सिद्ध की भाँति नहीं है, ऐसा नहीं है। इसीलिए यह शब्द प्रयोग किया है। कर्म का बन्ध का स्पर्श एक समय का ऊपर-ऊपर है। द्रव्य के स्वभाव में प्रविष्ट नहीं। क्षेत्र की व्यंजनपर्याय अनेकरूप हुई परन्तु पर्याय में ऊपर रही, कहीं स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हुई। काल में विभाव की हानि-वृद्धि अनेक हुई, परन्तु स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हुई। भाव में गुणभेद के विकल्प अनेक उठे परन्तु गुणभेद नहीं। वस्तु तो अभेद असंख्य प्रदेशी है। इसी प्रकार हर्ष-शोक का अनुभव पर्याय में है परन्तु वस्तु की दृष्टि में नहीं। इसलिए वस्तु के ध्रुव स्वभाव में षट् भाव प्रविष्ट नहीं है। ऊपर-ऊपर पर्याय में रहते हैं। समझ में आया? पर्याय को सिद्ध किया है, हों! कोई पर्याय उड़ावे तो वह मूढ़ है और पर्याय के आश्रय से धर्म मनावे तो भी मूढ़ है। दोनों बातें हैं। हरखचन्दभाई!

यह छहों भाव पर्याय में विद्यमान भाव है। विद्यमान विषय है पर्याय का—अवस्था का। परन्तु ऊपर-ऊपर रहता है। वस्तु से ऊपर पर्याय-पर्याय। एक समय की

पर्याय में यह छह भाव हैं। वस्तु के द्रव्यस्वभाव में, ध्रुवस्वभाव में, शाश्वत चैतन्य मन्दिर में, चैतन्य दीपक में यह छह भाव अन्दर प्रविष्ट नहीं हो गये। इसलिए ऐसा का ऐसा भाव (रहा है)। उसमें १४ में तो प्रश्न यह किया है न, भाई! शिष्य ने पूछा, प्रभु! इसका अनुभव कैसे हो? यह अबद्धस्पृष्ट आत्मा आप कहते हो, उसका अनुभव कैसे हो? कि भाई! (यह छह भाव) अभूतार्थ है, इसलिए अनुभव होता है। ऐसा शिष्य ने वहाँ प्रश्न किया है। अमृतचन्द्राचार्य ने स्वयं संस्कृत टीका की है। कि '**अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं अविसेसमसंजुत्तं**' ऐसा आत्मा का अनुभव कैसे हो? शिष्य ने प्रश्न किया धगश से अन्दर से। गुरु अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, शिष्य! वह अभूतार्थ होने से विद्यमान चीज़ शाश्वत रहे, ऐसी चीज़ नहीं है। पाँच भाव कहे, वे शाश्वत रहें, ऐसे नहीं हैं। यह छह भाव कहे वे शाश्वत रहे, ऐसे नहीं हैं। इसलिए शाश्वत चीज़ पर दृष्टि देने से वे चीज़ें टल जायेंगी और तुझे अनुभव होगा। समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ने तो बहुत शैली से (बात की है)। अपने तो सब व्याख्यान आ गया है। लिख गयी है न एक-एक गाथा पूरी। एक छप गयी है। छप गयी है, यह सब बात प्रकाशित हो गयी है। आ गयी है। यह तो रिकॉर्डिंग में आज उतरता है यह। समझ में आया?

षट्भाव ऊपर-ऊपर रहते हैं। भगवान! तेरा चैतन्य शाश्वत दीपक जो सम्यग्दर्शन का विषय जो नित्यानन्द ध्रुव है। उत्पाद-व्यय है सही। उत्पाद-व्यय भी पर्याय और व्यवहार का विषय है। यह सब षट्भाव उत्पाद-व्ययरूप है। और व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है और सम्यग्दर्शन का विषय उत्पाद-व्यय नहीं; सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव है। शाश्वत चिदानन्द ध्रुव है, इसलिए यह बात ली है। समझ में आया? षट्भाव ऊपर-ऊपर रहते हैं, ऐसा वापस सिद्ध किया है। भाई! वहाँ भी ऐसा कहा है न अमृतचन्द्राचार्य ने कि व्यवहारनय से विद्यमान पाँचों ही भाव भूतार्थ हैं। कोई ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या कहकर निकाल डाले तो वह पर्याय और व्यवहार समझा नहीं। एक ही आत्मा है, ऐसा इस समयसार में से निकलता है, ऐसा नहीं है। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या। पर्याय मिथ्या, अनित्या, मिथ्या। ऐसा नहीं है। सब है। पर्याय है, गुणभेद है, विकार है, निमित्त है, अनन्त आत्माएँ हैं, अनन्त कर्म हैं, सब है। परन्तु जिसे चैतन्य की नित्यता का स्वभाव एक-एक आत्मा का है, ऐसी सम्यक् दृष्टि प्रगट करनी हो, उसे

पर्याय के छह बोल की रुचि छोड़नी चाहिए। वे हैं, तथापि छोड़नी चाहिए। और ध्रुव में वे छह नहीं हैं। क्योंकि पर्याय में रहे हुए हैं।

पानी में तेल ऊपर-ऊपर है। उस पानी में तेल प्रविष्ट नहीं होता। उसी प्रकार चिदानन्द नित्य शाश्वत ध्रुव सदृश्य, उसमें उत्पाद-व्यय के यह छह भाव / बोल ध्रुव में प्रविष्ट नहीं हैं। इसलिए ध्रुव की दृष्टि कर, तो यह विकार टलकर अनुभव होकर सम्यग्दर्शन होगा। कहो, समझ में आया? अभी यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती है, हों! फिर उसे ऐसा भान होने के पश्चात् स्वरूप की विशेष रमणता होते... होते... होते राग घट जाता है, तब छठवाँ गुणस्थान भावलिंगी मुनि का हो जाता है। तब छठवीं भूमिका, सातवीं भूमिका जो हजारों बार भाव सन्तों को कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य महान भगवन्त सन्त मुनि थे, वे छठवीं और सातवीं भूमिका में झूलते थे। यह पहला होने के पश्चात् यह होता है। यह होने के पश्चात् आत्मा की रमणता करते... करते... करते सहजानन्द भावलिंग छठा-सातवाँ प्रगट हो, उसे द्रव्यलिंग नग्न हुए बिना तीन काल-तीन लोक में रहता नहीं। समझ में आया? परन्तु यह भान बिना के नग्न हो, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। वस्तु का भान नहीं और कदाचित् नग्न हों और सम्यग्दर्शन भी किसी को होता है, तो उसे भाव का भान होता है। उसे भाव का भान होता है कि मेरी दशा मुनि की नहीं है। एक (बात) चलती है शास्त्र में। भाई!

नौवें ग्रैवेयक जानेवाला होता है द्रव्यलिंगी मुनि। बाहर में द्रव्यलिंगी छठवें गुणस्थान की मुनि की सब क्रिया (पालता हो), अन्तर में आत्मा का ज्ञान हो, सम्यग्दर्शन। राग नहीं, पुण्य नहीं। तथापि वह बाहर में छठवें गुणस्थान की भूमिका के परिणाम हैं, वह नौवें ग्रैवेयक में चला जाता है। अन्दर है चौथा गुणस्थान और बाहर छठवें की क्रिया है। उसे भान वर्तता है कि मेरी भूमिका भावलिंगी मुनि की नहीं है। यदि भावलिंगी मुनि की हो तो क्षण-क्षण में छठवाँ और सातवाँ, छठवाँ और सातवाँ आना चाहिए। वह भूमिका न हो और छठवें गुणस्थान के यथार्थ परिणाम अन्दर जो चाहिए, वे हों, उसे व्यवहार के, ऐसे अन्दर से निश्चय सम्यग्दर्शन हो, नौवें ग्रैवेयक में चला जाता है। राजवार्तिक में यह अधिकार है।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे अभी सम्यग्दर्शन का ही भान नहीं कि षट्भावरहित

चिदानन्द कौन है। उसकी जिसे खबर नहीं, उसे सम्यग्दर्शन नहीं तो मुनिपना तो हो नहीं सकता। और इस सम्यग्दर्शन बिना बारह व्रत और पंच महाव्रत और संयम, तप और संवर-निर्जरा यह तीन काल में नहीं हो सकते। इसलिए इस जैनशासन का मर्म सम्यग्दर्शन के विषय का वर्णन चलता है।

जल के ऊपर काई की भाँति। दृष्टान्त विशेष दिया है। ऊपर कहा था न वह वहाँ कमलिनी के पत्र का कहा था। **जल के ऊपर काई की भाँति।** पानी के ऊपर जैसे काई होती है, उसी प्रकार आत्मा ज्ञानानन्द नित्यानन्द ध्रुव है, उस पर यह छह बोल शैवाल (काई) की भाँति वर्तते हैं। शैवाल होती है न? उसे क्या कहते हैं? हमारे काठियावाड़ में लील-फूग कहते हैं। लील-फूग, लील-फूग। काई। हमारे यहाँ लील-फूग कहते हैं। काई पानी के ऊपर है। अन्दर में नहीं, अन्दर प्रविष्ट नहीं हो गयी। उसी प्रकार चिदानन्द पानी ज्ञान जल, नित्यानन्द जल ध्रुव उसकी एक समय की पर्याय में विकार और पुण्य-पाप और संसार तथा उदय सब है, आकृति व्यंजन पर्याय की विभाव की। अन्दर जल स्वभाव में वह प्रविष्ट नहीं। इस ध्रुव की दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन है।

जल के ऊपर काई की भाँति। इतनी बात। **अपनी गुप्त शुद्धशक्ति को व्यक्तरूप से भाओ, जिससे वह व्यक्त हो।** गुप्त शुद्ध शक्ति। ध्रुव कही थी न ध्रुव? वह ध्रुव शक्ति तो तेरी गुप्त है। सामान्यपना गुप्त है। पर्याय में प्रगट नहीं। पर्याय है उत्पाद-व्यय प्रगट—व्यक्त है और ध्रुव, वह गुप्त है। शाश्वत वस्तु जो सम्यग्दर्शन का विषय परम पारिणामिकभाव, वह गुप्त है। यह सामान्य बोल कहे वे। गुप्त तथा ध्रुव। शुद्ध शक्ति-शुद्ध शक्ति। शाश्वत स्वभाव शुद्धरूप से, द्रव्यरूप से, गुणरूप से पड़ा है। वह तेरी शक्ति। चिदानन्द! **व्यक्तरूप से भाओ,....** उसे व्यक्त करके भावना कर कि मानो प्रगट वर्तमान अनन्त आनन्दमय हूँ। है तो शक्तिरूप से परन्तु पर्याय में जोर दे। ओहो! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य मानो पर्याय में हो, ऐसे शक्ति में है, उसे प्रतीति में व्यक्त करके भावना कर तो सम्यग्दर्शन होकर केवलज्ञान होगा। समझ में आया?

जल के ऊपर काई की भाँति। काई ऊपर है और पानी अन्दर है। उसी प्रकार पुण्य-पाप के विकल्प व्यंजन आकृति विभावपर्याय ऊपर है। स्वभाव तेरा सामान्य जो

ध्रुव कहा, वह गुप्त है। उसकी **चिदानन्द अपनी गुप्त शुद्धशक्ति को व्यक्तरूप से भाओ,....** प्रगट करके भावना (भा)। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।'—आता है न समयसार नाटक में। 'चेतनरूप अनुप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' है तो शक्ति से। व्यक्ति में नहीं, पर्याय में नहीं। यदि पर्याय सिद्धसमान हो तो यह संसार किसका? परन्तु सिद्ध शक्तिरूप से जो यह सामान्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव कहे त्रिकाल रहनेवाले, वे शक्तिरूप हैं। उसकी व्यक्तरूप करके (अर्थात्) व्यक्त मानो प्रगट हूँ, प्रगट हूँ, प्रगट हूँ—ऐसे प्रगट होने के योग्य को प्रगट हूँ, सिद्ध ही हूँ, परमात्मा हूँ, ऐसी श्रद्धा की भावना से व्यक्त बहे तो प्रगट होकर पर्याय रहे।

तू अविनाशी रस का सागर,.... लो! हे चिदानन्द! यहाँ से शुरु किया था न? हे चिदानन्द! यहाँ से शुरु किया, भाई उस ओर से। **चिदानन्द! तुम....** यहाँ से शुरु किया था। चिदानन्द, यहाँ से। गुरु ने तुमको... चिदानन्द। यहाँ से शुरु किया था। हिन्दी है न? समझ में आया? हे चिदानन्द! तू अविनाशी रस का सागर है। आनन्द के अविनाशी रस का सागर है। हर्ष-शोक तो तुझमें ऊपर-ऊपर काई की भाँति फिरता है। वह हर्ष और शोक, पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान। पानी में जैसे शैवाल, उसी प्रकार ऊपर-ऊपर है। तेरे मूल स्वभाव में नहीं है। तू अविनाशी रस का सागर।

पररस कैसे मीठा देखा? अरे! तुझे हर्ष-शोक... यहाँ अनुभव का ग्रन्थ है न, भाई! इसीलिए पररस तुझे हर्ष-शोक का अनुभव तुझे क्यों मीठा लगा? हर्ष और शोक, हर्ष और शोक। अनुभवप्रकाश ग्रन्थ है। इसलिए हर्ष और शोक, पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, शुभाशुभभाव विकार, वह पररस है। विकार है। पररस अर्थात्? है तो इसकी पर्याय का परन्तु कायम रहनेवाला नहीं है, इसलिए पररस गिन दिया है। **पररस कैसे मीठा देखा?** वह पररस तूने मीठा कैसे देखा? चिदानन्द का रस छोड़कर अविनाशी ध्रुव शाश्वत् का रस छोड़कर यह क्षणिक विषय के रस को मीठा कैसे लगा?

जिसके निमित्त से संसार का चक्कर हुआ.... भगवान चिदानन्द जिसके कारण इस संसार के चक्कर—परिभ्रमण तुझे होते हैं। यह हर्ष-शोक और पुण्य-पाप की मिठास से इस चौरासी में चक्कर खाता है। घूमता है, घूमता। चौरासी (लाख के)

अवतार में घूमता है। देखो! अनुभवप्रकाश है न। गुलाँट मारकर बात की है। आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना संसार तीन काल में टूटता नहीं। तू लाख अपवास कर, करोड़ अपवास कर, दया कर, तप कर, दान कर। परन्तु आत्मा कहा, उसके अनुभव बिना वह पररस विकल्प उठे (कि) यह अपवास करूँ, यह छोड़ूँ। वह सब रस है, राग है। वह राग का रस **कैसे मीठा देखा? जिसके निमित्त से संसार का चक्कर हुआ....** जिसके कारण तो संसार में तेरा परिभ्रमण हुआ। **उसी को भला जानकर सेवन करते हो?** देखा! व्यवहार को भला जानकर सेवन करता है? ऐसा कहते हैं, भाई! व्यवहार को अभूतार्थ कह दिया न! पुण्य-पाप, संकल्प-विकल्प, सब व्यवहार हर्ष-शोक तेरा स्वभाव नहीं।

भला जानकर... व्यवहार अच्छा है, व्यवहार अच्छा है, पुण्य अच्छा है, दया-दान अच्छे हैं। अरे! मर जायेगा। विकार अच्छा, तो अविकार अच्छा नहीं त्रिकाल, ऐसी दृष्टि तेरी मिथ्या हो जाती है। **विकार को भला जानकर सेवन करते हो? जैसे मदिरा पीनेवाला मदिरा पीता जाता है, दुःख पाता जाता है,...** जैसे मद का, शराब का पीनेवाला मनुष्य मदिरा पीकर दुःख पाता जाता है। पागल हो जाता है, ऐसे-ऐसे करता जाता है। **अधिक चक्कर में भला जान-जानकर सेवन करता है,....** लो! वह घूमे न वापस? चक्कर खाये शराब पीया हुआ मनुष्य। और डोले, ऐसे-ऐसे हो.... ऐसे-ऐसे हो... चक्कर खाये। मदिरा पीवे और दुःख पाता जाता है। उसी प्रकार पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया-दान, व्यवहार-विकल्प, हर्ष-शोक को भला मानकर त्रिकाल चिदानन्द को चूककर मद पीया है मोह मिथ्यात्व का तूने। तूने मिथ्यात्व की मदिरा से व्यवहार विकल्प सब अच्छे लगते हैं। आस्रव है, विकार है, वे अच्छे लगते हैं। अनास्रवी त्रिकाल चिदानन्द तुझे अच्छा नहीं लगता।

तो कहते हैं कि जैसे मिथ्यात्व सेवन करे और दुःख पाता जाता है, वह मद पीवे और दुःख पाता जाता है। **अधिक चक्कर में भला जान-जानकर सेवन करता है; तू भूला है।** उसी प्रकार तू मद से भूला है। इसलिए आत्मा का अनुभव करना हो तो यह दृष्टि कही, ऐसा कर। इसके बिना अनुभव हो, ऐसा नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(गोगीदेवी आश्रम के प्रथम वार्षिक प्रसंग के अवसर पर आश्रम में प्रवचन)

माघ शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक - १९-१-१९५३, पृष्ठ नं. - ७१, प्रवचन -२

यह अनुभवप्रकाश ग्रन्थ। इसमें ७१ पृष्ठ है गुजराती में। देखो! यह अधिकार अनुभवप्रकाश का है। अनुभवप्रकाश अर्थात् आत्मा का आनन्दस्वभाव जो ध्रुवरूप त्रिकाल है, उसके स्वरूप की रुचि और दृष्टि करके उसमें लीनता का भाव होना, उसे अनुभव कहते हैं। उस अनुभव को धर्म कहते हैं। और वह धर्म, वह मोक्ष का मार्ग है। उस काल में एक समय में आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है, ऐसा व्यवहार के राग और निमित्त की रुचि छोड़कर वर्तमान पर्याय को स्वभाव—सन्मुख करके आत्मा का स्वसंवेदन, आनन्द हो उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्ररूप अनुभव कहते हैं। उसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। वह धर्म अनुभव से होता है, इसलिए अनुभव को धर्म कहा है।

यहाँ तो स्थापना की बात चली है। भगवान तीर्थंकरदेव की स्थापना, वह भी धर्मात्मा को सम्यग्ज्ञान होने पर, पूर्ण वीतराग न हो तब उसे शुभराग में पूज्यपना उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। शुभराग के कारण भगवान की प्रतिमा में बहुमान आता है। क्यों आता है, वह अब कहते हैं।

स्वसंवेदनरूप वीतरागमुद्रा को देखकर.... देखो! यहाँ से शुरु होता है। है न इसमें? **स्वसंवेदनरूप वीतरागमुद्रा को देखकर....** पहली बात तो यह है कि यह आत्मा स्वज्ञान से स्व को वेदन कर सकता है। ज्ञान, ज्ञान से ज्ञात होता है। ज्ञान राग से नहीं, विकार से नहीं, संयोग से नहीं, पुस्तक-पृष्ठ से नहीं, देव-गुरु-शास्त्र से भी ज्ञान नहीं ज्ञात होता। स्वसंवेदनरूप—वह ज्ञान ज्ञान के अपने स्वसंवेदन वेदन से ज्ञात हो, ऐसा स्वरूप है। ऐसा जो जाना और आत्मा अक्रियबिम्ब ज्ञान की मूर्ति है, ऐसा जानने के पश्चात् जब शुभराग और विकल्प उठा और वीतराग मुद्रा पर उसका लक्ष्य जाता है, तब कहते हैं कि वीतराग ही मुद्रा। **स्वसंवेदनरूप वीतरागमुद्रा को देखकर....** प्रतिमा को... ऐसा कहते हैं। वीतरागमुद्रा को जानकर। ज्ञान का वेदन अक्रियबिम्ब मानो स्थिर हुआ हो और पुण्य-पाप का विकल्प मानो न हो, ऐसे स्वरूप की प्रतिबिम्ब दशा देखकर

स्वसंवेदनभावरूप अपना स्वरूप विचारे- यह भगवान की प्रतिमा देखकर वीतराग शान्त निर्विकार, नि:शृंगार, अवस्त्र और शान्त प्रतिमा।

अपना स्वभाव शान्त है, अनाकुल है, राग की क्रियारहित है। ऐसा भान होने पर राग में वीतराग की मुद्रा देखते **स्वसंवेदनभावरूप अपना स्वरूप विचारे**- अहो! अक्रियबिम्ब भगवान हुए, वह मेरा स्वरूप भी ऐसा अक्रिय है। रागरहित, शरीर की क्रियारहित, मनरहित चिद्‌बिम्ब, जिनबिम्ब मेरा स्वरूप ही चिद्ज्ञान बिम्ब और जिनबिम्ब है। ऐसे जिनबिम्ब को देखकर अपने को जो विकल्प स्वयं के कारण से आया, उसमें कहते हैं, **स्वसंवेदनभावरूप अपना स्वरूप विचारे**-अपना स्वरूप विचारे। क्या विचारे ?

पूर्व में ये सराग थे.... यह वीतराग प्रतिमा है, वे वीतराग भगवान भी पूर्व में रागवाले थे। **राग मिटाकर वीतराग हुए हैं।** उपदेश के वाक्य तो समझने के लिये तो ऐसा ही कहे न। राग को मिटाया अर्थात् कि वीतरागी चिद्‌बिम्ब आत्मा के स्वरूप में लीन हुए। उन्होंने राग को हटाया, मिटाया और वीतराग हुए। समझ में आया ? राग शब्द से पुण्य-पाप निमित्त की रुचिपूर्वक का राग सब राग है। वह भी सर्वज्ञ भगवान होने से पहले वे भी अज्ञानी, ज्ञान होने से पहले वे अज्ञानी थे। और ज्ञान होने के पश्चात् भी जब राग था, वह स्वरूप की लीनता अन्तर की लीन द्वारा राग टालकर अर्थात् कि राग का व्यय होकर और वीतराग हुए, ऐसा कहकर कहा कि वीतराग कहीं ये अनादि के नहीं थे।

अनादि का वीतराग नहीं था। वीतराग तो रागसहित जो संसार में पहली दशा थी, उसके स्वभाव के आश्रय से व्यय-लय करके स्वभाव की वीतरागता उन्होंने उत्पन्न की है। ...धर्मात्मा भी विचार करता है कि मैं सराग हूँ। मुझमें, मेरी पर्याय में मेरी कमजोरी से जरा राग की वृत्ति उठती है।

उनकी भाँति यदि मैं भी राग मिटाऊँ तो अपने वीतरागपद को प्राप्त करूँ। उन्होंने राग मिटाया। राग शब्द से व्यवहाररत्नत्रय। व्यवहाररत्नत्रय, वह सब राग है। ब्रह्मचारीजी! वह व्यवहाररत्नत्रय विकल्प उठता है पंच महाव्रत का, बारह व्रत का, देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति का, शास्त्र के पठन का विकल्प, वह सब व्यवहार—राग है। यह मैं राग हूँ, सराग हूँ। मेरे सराग पर्याय होती है। **यदि मैं भी राग मिटाऊँ....** उन्होंने भी राग का नाश करके, मिटाकर वीतराग हुए, उनकी भाँति मिटाऊँ तो **अपने**

वीतरागपद को प्राप्त करूँ। वीतराग मेरा पद मैं प्राप्त करूँ। कोई भगवान मेरे पद को दे नहीं देता। मेरा स्वरूप सच्चिदानन्द, ज्ञानानन्द, आनन्दकन्द सच्चिदानन्द मैं हूँ। सत् अर्थात् त्रिकाल, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का भण्डार हूँ। मेरी वर्तमान दशा में विकार क्षणिक पुण्य-पाप दिखते हैं, वह आकुलता और उपाधि है। वह पर्यायबुद्धि छोड़कर स्वभावबुद्धि हुई तो उसकी स्थापना यथार्थरूप से होती है। मिथ्यादृष्टि की स्थापना यथार्थरूप से नहीं होती।

यद्यपि स्थापना तो व्यवहार है, ज्ञान का ज्ञेय है। तो जिसे ज्ञान का-स्व का भान हुआ, उसे विकल्प उठा, तब वह व्यवहार से ज्ञेय है ऐसा कहने में आता है। उसे वास्तव में प्रतिमा पूज्य व्यवहार से समकिती को है। मिथ्यादृष्टि को वास्तव में पूज्य नहीं है। भगवान की स्तुति करते हुए समन्तभद्राचार्य भी कहते हैं, 'हे नाथ! आप अभव्य को पूज्य नहीं हैं। अभव्य को आप पूज्य नहीं हैं। आप तो ज्ञानी को ही पूज्य हैं क्योंकि आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य के भान बिना....'—जो यह वस्तुस्वरूप है, उसके भान बिना उस अभव्य को वीतरागता और सर्वज्ञता क्या है, उसे प्रतीति में नहीं आती। इसलिए आप अभव्य को पूज्य हो ही नहीं। अभव्य को पूज्य हो ही नहीं सर्वज्ञ। वे तो ज्ञानी को पूज्य हैं। उसे भान हुआ है कि मुझमें ज्ञानशक्ति है। उसमें से व्यक्त करके सर्वज्ञ हुए। मुझमें सर्वज्ञ शक्ति त्रिकाल है। उसके आश्रय से मैं भी सर्वज्ञ होनेवाला हूँ। ऐसी प्रतीति करनेवाले को भगवान पूज्य है। अज्ञानी को पूज्य नहीं।

यहाँ कहते हैं कि भगवान को सर्वज्ञ को पूज्य कौन मानता है ? और प्रतिमा को भी पूज्य कौन मानता है ? व्यवहार से। मैं तो सराग वर्तमान में हूँ। राग मिटाकर वीतराग हुए। मैं भी राग मिटाकर वीतराग मेरे पद को मैं प्राप्त करूँ। निश्चय मैं हूँ, वीतराग हूँ। निश्चय में तो हूँ। वर्तमान भी वीतराग होऊँ। वास्तव में तो मेरा स्वभाव ही वीतराग—रागरहित, विकल्परहित, निमित्तरहित, अपेक्षारहित है। पर की कुछ अपेक्षा मेरे स्वरूप में—ध्रुव नित्यानन्द में है नहीं। पर की उपेक्षावाला मेरा त्रिकाली स्वभाव है। उसकी (पर की) अपेक्षावाला मेरा स्वभाव नहीं। ऐसा निश्चय से तो मैं वीतराग ज्ञानबिम्ब चिद्घन चैतन्य प्रतिमा हूँ। चैतन्य प्रतिमा। परन्तु वर्तमान में मेरी पर्याय में राग है। उस (राग को) स्वभाव के अवलम्बन से छोड़कर मैं वीतराग होऊँ। ऐसी मेरी भावना है।

ज्ञानी वह वीतराग सर्वज्ञ को अथवा प्रतिमा को इस प्रकार पूज्य मानता है। वह उत्तम है।

देखो! दृष्टान्त—उदाहरण दिया उस शास्त्र के वचन का। '**पिच्छहु अरहो देवो पच्छरघडियोहु दरसयं मग्गं**।' देखो! अरिहन्तदेव पत्थर की घड़ी हुई प्रतिमा, पत्थर की घड़ी हुई प्रतिमा '**दरसयं मग्गं**' परन्तु मार्ग को दिखाती है। यह निमित्त से कथन है। ...ऐसा है। देखो! अरिहन्तदेव की प्रतिमा वीतराग मुद्रा शान्त। स्त्री नहीं, वस्त्र नहीं, शस्त्र नहीं, कुछ नहीं—ऐसी चिदानन्द मूर्ति ऐसे स्थिर होकर स्थित है। देखो! '**अरहो देवो पच्छरघडियोहु दरसयं मग्गं**।' पत्थर की घड़ी हुई परन्तु वास्तव में वह मार्ग को दिखाती है। प्रतिमा मार्ग को दिखाती है। यह तो जिसे मार्ग का भान हुआ कि मैं ज्ञानानन्द हूँ, चिदानन्द हूँ। शरीर के रजकण से पार मेरी शक्ति है। पुण्य-पाप के विकार से भी मेरी शक्ति तो अधिक दूर है। ऐसा मेरा स्वभाव है। ऐसा भान हुआ, प्रतिमा अपने को वीतरागी मार्ग दिखलाती है। भाई! प्रतिमा मार्ग दिखलाती है। ....भाई!

ऊपर कहा न वीतराग मुद्रा। ओहो! शान्त.... शान्त.... लोकालोक को देखते हैं, जानते हैं। बस! कोई विकल्प नहीं। संसार में खलबलाहट हो, अनुकूलता हो, मारफाट हो या अशान्ति ... अनेक जीव मुक्ति में जानेवाले तैयार हों, उन्हें तो कुछ है नहीं। है? एक समय में १०८ मोक्ष जानेवाले हों। और मारफाट एक समय में नरक और नारकी में हो। देखते-जानते हैं। बस! देखते-जानते हैं। लोकालोक को देखते-जानते हैं। ऐसे स्वभाव की प्रतिमा वीतराग मुद्रा आत्मा के मोक्षमार्ग को दिखलाती है। ठहरो... ठहरो... ठहरो... तुम्हारे स्वरूप में ज्ञान है, ज्ञाता हूँ, ज्ञायक हूँ परन्तु विकल्प उठे वह और निमित्त-फिमित्त नहीं। उसका मेरे स्वरूप में अभाव है। निमित्त का भी मेरे स्वभाव में अत्यन्त अभाव है और पुण्य-पाप व्यवहार संसार का विकल्प उदयभाव है, उसका भी स्वभाव में अत्यन्त अभाव है। स्वभाव में अत्यन्त अभाव है। ऐसा मार्ग वीतराग मुद्रा दिखलाता है।

'**दरसयं मग्गं**' दिखलाती है। **इस स्थापना के निमित्त से....** देखो! निमित्त की बात है, हों! यह। समझे उसे निमित्त कहलाये या न समझे उसे (निमित्त) कहाँ से? निमित्त का तो यह बड़ा झगड़ा अभी उठा है। ज्ञायक का भान हुआ, उसे (सर्वज्ञ) निमित्त कहलाते हैं। नहीं तो उनके निमित्त से हो तो अनन्त सर्वज्ञ के पास जा आया।

सर्वज्ञ की सभा में समवसरण में भी अनन्त बार गया। और समवसरण में मणिरत्न के थाल में.... समझ में आया? कल्पवृक्ष के फूल से भगवान की साक्षात् पूजा की। परन्तु वह तो पुण्य है, शुभ है, विकार है। आत्मा ज्ञायक चिदानन्द के स्वावलम्बी भान बिना वह भगवान निमित्त भी नहीं हो सकते।

यहाँ कहते हैं। परन्तु यहाँ तो स्थापना को निमित्त कहा। साक्षात् प्रतिमा बिम्ब पड़ी हों। चिदानन्द.... चिदानन्द.... चिदानन्द.... शृंगार नहीं, आयुध नहीं, स्त्री नहीं। शान्त... शान्त.... शान्त.... ऐसे स्थापना के निमित्त से **तीन काल, तीन लोक में भव्य जीव धर्म साधते हैं,....** भव्य जीव धर्म साधते हैं। भव्य अर्थात् योग्य। जिनकी प्रगट होने की योग्यता है उन्हें स्थापना निमित्त कही जाती है। यह स्थापना ... प्रतिमा देती-लेती नहीं। प्रतिमा तो पत्थर से घड़ी है। यह तो बताया। वह तो पत्थर की घड़ी हुई है। परन्तु मैं अक्रम ज्ञायक चिदानन्द हूँ। ऐसा भान हुआ। ...स्थिर हो जाओ... स्थिर हो जाओ... शान्त हो जाओ... अनाकुल शान्तरस में डूब जाओ। उपशम रस तेरा स्वभाव है। अकषाय स्वभाव में स्थिर होओ, ऐसा मार्ग बताती है।

इस स्थापना के कारण तीन काल और तीन लोक में भव्यजीव धर्म साधते हैं। निमित्त के वचन सुनकर लोग निमित्त में ही सब आरोप दे देते हैं। समझ में आया? यहाँ तो व्यवहार से कथन किया है। जिसे आत्मा का भान है, मेरा स्वभाव ही ज्ञायक है, यह राग उठता है स्वकाल का, उस प्रकार का अपराध है और निमित्त पर है। ऐसा भास हुआ, भाव का भास हुआ, चैतन्य के भाव के भासन में भगवान की प्रतिमा तीन लोक -तीन काल में निमित्तरूप से **भव्यजीव धर्म साधते हैं,....** यदि भगवान से धर्म... प्रतिमा से होता हो तो प्रतिमा देखकर सबको होना चाहिए। चिड़िया उड़-उड़कर भगवान की प्रतिमा पर बैठे तो उसकी मुक्ति होनी चाहिए। उससे नहीं होती।

भव्य जीव अर्थात् जिसकी अन्तर में योग्यता चिदानन्दस्वभाव अक्रिय रागरहित, पर की क्रियारहित और रागरहित मेरे ज्ञान की क्रियावाला ऐसा मेरा स्वभाव स्वतन्त्र है। उसका जिसे भास हुआ, तीन काल-तीन लोक में भव्य जीव स्थापना के निमित्त से धर्म साधता है। है? नारकी साधता है या नहीं? उसे कोई स्मरण आवे। उसे स्मरण में आवे कि ऐसे भगवान थे। ऐसे भगवान पूर्व में हमने देखे हैं। कितने ही नारकी को जातिस्मरण

होता है। वह जातिस्मरण... ओहो! प्रतिमा ऐसी थी। समझ में आया? तीर्थंकर की प्रतिमा ऐसी मनुष्यक्षेत्र में थी, ऐसा भान होकर भी उसके कारण से विचाररूप होकर धर्म साधता है। मनुष्यलोक में साधता है, देवलोक में शाश्वत् प्रतिमा है। नारकी में भी जातिस्मरण द्वारा स्थापना इत्यादि का लक्ष्य करके, विचारणा करके धर्म साधता है। ...कहते हैं न भाई! भवनपति है न? भवनपति है, वहाँ उसके विमान में मन्दिर है, प्रतिमायें हैं। भवनपति में अकृत्रिम शाश्वत् प्रतिमा है। तीन लोक के अन्दर शाश्वत् प्रतिमायें वीतराग मुद्रासहित हैं। उसे देखकर भव्य जीव धर्म साधते हैं। देव भी साधते हैं न वहाँ भवनपति? कितने ही सम्यग्दृष्टि होते हैं। अपने स्वरूप को, ओहोहो! यह परमात्मा ऐसे! लोक के साथ (अनादि से) जैसे आत्मा सर्वज्ञ होता है, उसी प्रकार सर्वज्ञ की प्रतिमा भी लोक के साथ अकृत्रिम अनादि होती है। अनादि से। लोक अकृत्रिम अनादि; उसी प्रकार प्रतिमा भी अकृत्रिम अनादि है। ऐसा विचार करके प्रतिमा को देखकर भव्य जीव अधोलोक में, मध्यलोक में और ऊर्ध्व लोक में भव्य जीव धर्म साधते हैं। प्रतिमा को जिसने उत्थापित किया है, उसे धर्म की खबर नहीं। धर्म (कैसे) हो? सम्यग्दर्शन क्या है, यह भी उसे खबर नहीं।

सम्यग्दृष्टि को जब तक वीतरागता न आवे, तब तक ऐसे आकृति देखकर स्वयं के कारण से राग आये बिना नहीं रहता। पर के कारण से नहीं। स्थापना के कारण से नहीं। उसे राग की भूमिका है तो उसका लक्ष्य ऐसे जाता है कि ओहो! सर्वज्ञदेव ऐसे होते हैं। परमात्मा ऐसे स्थिर हो गये। तीन काल-तीन लोक का ज्ञान स्व-परप्रकाशक प्रगट करके और परमानन्द का अनुभव करते हैं। इसलिए स्थापना को देखकर तीन काल-तीन लोक में भव्य जीव धर्म साधते हैं। देखो, यह स्थापना की बात है। चार निक्षेप की बात चलती है न? अरिहन्त के चार निक्षेप की बात चलती है कि नामनिक्षेप से भी बहुत तिरे, स्थापना से भी तिरे स्वयं के भानवाले। **इससे स्थापना परम पूज्य है।** भगवान की स्थापना परम पूज्य है।

अब द्रव्यनिक्षेप। **द्रव्यजिन द्रव्यजीव (है), वह भी भाव पूज्य है।** क्या कहते हैं? द्रव्यजिन द्रव्यजीव। उनका आत्मा तीर्थंकर होनेवाला है, ऐसा जो द्रव्यजिन द्रव्यजीव। ... **द्रव्यजिन द्रव्यजीव (है), वह भी भाव पूज्य है।** वर्तमान में वह तीर्थंकर नहीं परन्तु

वह तीर्थंकर होने का पूजनीक, वह द्रव्यजिन रूप से भी पूजनीक है। समझे? .... तीन कल्याणक के पश्चात् बात लेंगे, हों! ...बात लेते हैं। **अथवा तीन कल्याणक तक द्रव्यजिन हैं, वे पूज्य हैं।** यह अलग बात लेंगे। यहाँ तो यह कहते हैं कि द्रव्य तीर्थंकर है, अभी तीन कल्याणक नहीं, ऐसी... उठाई है। द्रव्यजिन द्रव्यजीव वह भाव पूज्य है। इसके अतिरिक्त दूसरे पूज्य भाव है नहीं। भाविनय की अपेक्षा से पूज्य है। भविष्य में होनेवाले हैं, इस नय से वे वर्तमान में भी पूज्य हैं। ....भाई!

अथवा.... उस द्रव्य के भेद किये हैं। **तीन कल्याणक तक द्रव्यजिन हैं,....** तीन कल्याणक। समझ में आया? गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक... दीक्षा कल्याणक। तीन केवलज्ञान हो, तब तो भावजिन है। केवलज्ञान तो भावजिन है। प्रथम जन्म कल्याणक, गर्भ कल्याणक और दीक्षा कल्याणक। इन कल्याणक में... तीर्थंकर का आत्मा वह द्रव्यजिन है। **वे पूज्य हैं।** देखो! भगवान जहाँ जन्मते हैं, वहाँ इन्द्र पूजते हैं। जन्मते हैं, वहाँ इन्द्र आकर पूजते हैं, वह द्रव्यजिन है। भविष्य में होनेवाले हैं। ऐसा करके भी वर्तमान द्रव्यजिन पूजनीक है। नाम पूजनीक, स्थापना पूजनीक, द्रव्य पूजनीक और भाव... चारों ही पूजनीक है। उस ज्ञानी के ज्ञान में वीतरागता का स्वभाव में भास हुआ, पूर्ण वीतरागता को प्राप्त और प्राप्त करनेवाले, प्राप्ति की योग्यतावाले, प्राप्त की स्थापना और आकार तथा प्राप्त का नाम। ये चारों ज्ञानी के पूज्य हैं। शुभराग आने पर पूजनीक भाव हुए बिना नहीं रहता। कहो, समझ में आया? लो, यह द्रव्यजिन की बात की।

अब भावजिन। भावजिन। **समवसरणमण्डित, अनन्त चतुष्टययुक्त भावजिन भव्यजीवों को तारें,....** समवसरणमण्डित धर्मसभा बारह प्रकार की। अनन्त चतुष्टययुक्त। यह समवसरण पुण्य की ऋद्धि ली। और अनन्त चतुष्टय अर्थात् अन्तर की ऋद्धि ली। बाह्य और अभ्यन्तर दोनों। अनन्त चतुष्टय—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य ऐसी जिसकी शक्ति में से व्यक्त प्रगट दशा हुई **भव्य जीवों को तारे....** भव्यजीव को तारे। उपचार से (कथन) है। जिसकी ...निकलने की ताकत अन्तर में हुई और ज्ञानानन्दस्वभाव का भान। यह ज्ञान ही कोई ऐसा है कि उसकी कला खिलते-खिलते सर्वज्ञ को पा जाता है। ऐसी कला मतिज्ञान के एक अंश की कला में केवलज्ञान की कला का ख्याल आ गया। मतिज्ञान के एक अंश की कला में राग और निमित्त बिना

की स्वसंवेदन के एक अंश में मतिज्ञान सम्यक् कला ऐसी है कि केवलज्ञान कला में से प्रगटेगा। ऐसी उसे प्रतीति आ गयी है।

इसलिए कहते हैं कि भावजिन सर्वज्ञ परमात्मा जो समवसरण में मण्डित है। **अनन्त चतुष्टय भव्यजीवों को तारे,....** भव्यों को तारे। अर्थात् इसका अर्थ यह हुआ कि योग्य है, उसे तारण करने का निमित्त होता है। ... भव्य रखा था। आत्मा में भी भव्यजीव धर्म साधे, ऐसा कहा। और उसमें भी भव्यजीव अर्थात् योग्य जीव हो, उसे वीतराग निमित्त होते हैं। न लायक हो उसे वीतराग कहीं जबरदस्ती देते नहीं। यह निमित्त की बात से कर जाये ऐसी बात तीन काल में है नहीं।

दिव्यध्वनि से उपदेश देकर.... अब कहते हैं। **दिव्यध्वनि से उपदेश देकर....** दिव्यध्वनि खिरी। सर्वज्ञ भगवान समवसरण में हों, अनन्त चतुष्टययुक्त **दिव्यध्वनि से उपदेश देकर साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करें....** लो! साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा बरसाते हैं। समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा। परन्तु जिसे मोक्षमार्ग समझ में आये, उसे साक्षात् मोक्षमार्ग वर्षा करते हैं, ऐसा कहा जाता है। साक्षात् मोक्षमार्ग आत्मा के आनन्दघन का चिदानन्द परमात्मा अनन्त गुण का सागर हूँ। तेरे गुण की कला वह तेरे पास पूरी पड़ी है। वह पूरा परमात्मा ईश्वर शक्तिवान है। तू भगवान है, तू ईश्वर है, तू परमात्मा है। तेरे प्रभुत्व की शक्ति तेरे द्रव्य में व्यापी, गुण में व्यापी और पर्याय में व्यापी है। प्रभुत्व तीनों में तू प्रभु है। पर्याय में भी प्रभु, गुण में भी प्रभु और द्रव्य में प्रभु। प्रभुत्वशक्ति है न? शक्ति तो द्रव्य-गुण-पर्याय में रहती है। वह प्रभुता कहीं बाहर से लानी नहीं पड़ती।

दिव्यध्वनि से उपदेश देकर साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करें- वर्षा बरसावे। **ऐसे परमात्मा को भावजिन कहा जाता है।** ऐसे जीव को परमात्मा भावजिन, भावजिन कहा जाता है। साक्षात् मोक्षमार्ग अर्थात् क्या? कि आत्मा के स्वभाव सन्मुख के मार्ग की ही मुख्य बात करते हैं, भाई! वीतराग। साक्षात् मोक्षमार्ग अर्थात् परम्परा का जो विकल्प है, वह बात गौण रह जाती है। समझ में आया, क्या कहना चाहते हैं? दिव्यध्वनि में क्या सार आता है? सर्वज्ञ की वाणी में सार-सार। साक्षात् मोक्षमार्ग। अर्थात् आत्मा के स्वभाव सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता वीतराग मोक्षमार्ग कहते हैं। ऐसा राग उठे, विकल्प उठे, उसे भगवान मोक्षमार्ग नहीं कहते।... सर्व शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता

है। तो वीतराग ... साक्षात् मोक्षमार्ग यह तात्पर्य है। तो विकल्प उठता है व्यवहार, वह मोक्षमार्ग नहीं। वह तो बन्धमार्ग है। समझ में आया?

दिव्यध्वनि से उपदेश देकर.... साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा... वर्षा... बरसाते हैं। अर्थात् कि वीतरागभाव चैतन्य के सन्मुख जा। व्यवहार और निमित्त की उपेक्षा कर, स्वभाव की अपेक्षा कर, निमित्त और व्यवहार की अपेक्षा छोड़। ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि में उपदेश आता है। समझ में आया? निमित्त और राग की अपेक्षा छोड़ और स्वभाव की अपेक्षा कर। पर की अपेक्षा छोड़, स्व की अपेक्षा कर। ऐसा ही दिव्यध्वनि में उपदेश है। नित्यानन्द नित्यानन्द प्रभु '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' वीतराग की वाणी में यह भूतार्थ चिदानन्द विद्यमान पदार्थ नित्यानन्द है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। वह पर्याय, राग और निमित्त के अवलम्बन से नहीं होता। स्वभाव भूतार्थ, उसके अवलम्बन से स्वसंवेदन ज्ञान होता है, वह शास्त्र से, विकल्प से और निमित्त से नहीं होता। ...स्वस्वभाव के अवलम्बन से भूतार्थ के अवलम्बन से ही चारित्रदशा होती है। कोई पंच महाव्रत और विकल्प के कारण चारित्र नहीं होता। समझ में आया?

दिव्यध्वनि से उपदेश देकर.... साक्षात् मोक्षमार्ग (की) वर्षा करे। उन वीतराग की वाणी में तो रागरहित वीतरागता की ही बात आती है। राग बीच में आवे, उसका ज्ञान कराते हैं, परन्तु वीतरागता एक ही आदरणीय है। एक ही बात कहते हैं। ...वीतरागभाव एक ही आदरणीय है। परन्तु निमित्त की अपेक्षा करना, वह राग है; राग की अपेक्षा करना, वह राग है; पर्याय की अपेक्षा करना, वह भी राग है। पर्याय की अपेक्षा से... पर्याय उसका आश्रय करे तो राग का विकल्प उत्पन्न होता है। वह तो चिदानन्द शक्ति का अवलम्बन कराने के लिये दृष्टि, ज्ञान और वीतरागभाव ही उपदेश करते हैं। दूसरा उपदेश वीतराग की दिव्यध्वनि में मुख्य नहीं आता, दूसरे का ज्ञान कराते हैं।

उस **दिव्यध्वनि से उपदेश देकर साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करें**- देखा वर्षा क्यों लिया है? कषाय अग्नि को शीतल करे। समझ में आया? वीतराग की वाणी में यह भाव आता है कि जितना विकल्प पुण्य-पाप का कषायरूपी अग्नि होती है, वह स्वभाव की शान्ति सन्मुख में होकर अग्नि बुझती है। वह कषाय की अग्नि, कषाय को करते-करते बुझेगी? ओलवाय समझे न? बुझना। बुझा दिया। कषाय से कषाय नहीं बुझाती।

अकषायभाव से कषाय बुझती है। तो वह वर्षा ली है। **उपदेश देकर साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करें**- कि अग्नि हो तो भी बुझ जाए बरसात में। वीतराग की वाणी में ऐसा आता है, अहो! तेरा स्वभाव अमृतपिण्ड है, नित्यानन्द है, अनाकुल शान्तरस से भरपूर ध्रुव है। उसके सन्मुख दृष्टि ज्ञान और रमणता होकर संसार की दावानल अग्नि जो विकल्प में उठी है, उसे बुझाने का साधन है, दूसरा कोई साधन नहीं है।

वीतराग की वाणी में, एक शुभराग भी आदरणीय है, यह वाणी में नहीं आया। उस **दिव्यध्वनि से उपदेश देकर साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करें**- वे तो मोक्षमार्ग की वर्षा बरसाते हैं। वीतराग शान्ति.... शान्ति.... शान्ति.... दुनिया दुनिया के कारण से परिणम जाती है। तेरा परिणमन तेरे स्वभाव के आधार से है। राग को नहीं, संयोग को नहीं, निमित्त को नहीं। शरीर और संहनन के कारण भी तेरी शान्ति नहीं है। साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करे। अनादि संसार दावानल में सुलगता है विकल्प और पुण्य-पाप के विकार में (जलता है), उसे स्वभाव की शान्ति का मार्ग वर्षाकर उसे शान्त करते हैं। उन्हें परमात्मा भावजिन कहते हैं। उन सर्वज्ञ को पहिचानने का साधन कहा। भगवान की वाणी में तो वीतरागता को ही मोक्षमार्ग, वीतरागी मोक्षमार्ग आता है। बाकी सब छह द्रव्य और नव तत्त्व चाहे जो बात करे।

हेतु यह है कि स्वभाव सन्मुख झुक और विभाव की अपेक्षा छोड़। विभाव की अपेक्षा छोड़। एक ही बात वीतराग की मूल वाणी में आती है। ऐसी वर्षा भगवान की वाणी में निकलती है। भव्यजीव आत्मा की शान्ति को पहिचानकर संसार के दावानल को बुझा डालते हैं। लो, यहाँ तक अरिहन्त के चार निक्षेप यह लिये—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव।

अब सिद्ध भगवान का वर्णन करते हैं। सिद्ध भगवान का वर्णन करते हैं। देव है न देव? देव का वर्णन है न! तो देव तो दो हैं। अरिहन्त भी देव हैं और सिद्ध भी देव हैं। **अब सिद्धदेव का वर्णन करते हैं**। सिद्ध का वर्णन करते हैं। **सिद्ध निराकार परमात्मा है;....** लो! सिद्ध भगवान शरीररहित। यह अरिहन्त को भी साकार लिया था न शरीरसहित। शरीरयुक्त लिया था न अरिहन्त को। निमित्त से। सिद्ध को निमित्त छूट गया। निराकार। निराकार क्या? शरीर और इन्द्रिय का आकार नहीं। स्वभाव तो अरूपी,

अरूपी स्व अवगाहनरूपी आकार है। स्व अवगाहनरूपी आकार है। समझ में आया? स्व अवगाहन का तो आकार है परमात्मा में। सिद्ध निराकार। शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं और राग नहीं, ऐसे परमात्मा निराकार परमात्मा।

अनन्त गुणरूप हुए अपने अनन्त सुख को गुणों एवं पर्यायों से वेदकर.... अब जरा उसमें सिद्ध का स्वरूप वर्णन करते हैं। वह पहले अरिहन्त का वर्णन किया था कि उस केवलज्ञान में सब जाना था। चार कर्म टले नहीं। परन्तु अमुक काल में टलेंगे और व्यक्तगुण होंगे, ऐसी बात ज्ञान में केवली को एक समय में आ गयी है। अब इन्हें ....भाई! उसमें ...चार अघातिकर्म थे। व्यक्त नहीं था और अव्यक्त है। तत्पश्चात् उनके ज्ञान में व्यक्त हो गया है। ऐसे सिद्ध हैं। अरिहन्त भगवान को आत्मा में चार घाति टलकर जो गुण प्रगट हुए। अघाति टले नहीं। परन्तु व्यक्त हो तब वर्तमान प्रतीति जो गुण की पर्याय व्यक्त नहीं। परन्तु अमुक काल में होगी, ऐसा ज्ञान... वर्तमान आ गया है। सिद्ध को सब व्यक्त हो गया है। इसलिए यहाँ से सीधा शुरु किया।

अनन्त गुणरूप हुए.... वे तो अनन्त-अनन्त गुण, उनकी सत्ता में पड़े हैं। उनकी पर्यायरूप परिणमन अर्थात् सब अवस्था हो गयी है। **अपने अनन्त सुख को गुणों एवं पर्यायों से वेदकर....** अपने अनन्त आनन्द को गुण और पर्याय से वेदे। गुण की परिणति द्वारा—पर्याय द्वारा गुण को वेदते हैं। समझ में आया? तो उसे वेदने का, अनुभव करने का क्या होगा सिद्ध को? कि शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, खाना-पीना या लड्डू-बड्डू वहाँ है? लड्डू है अन्दर में। यह आत्मा आनन्दकन्द अनन्त गुण जो प्रगट हुए, **अनन्त सुख को गुणों एवं पर्यायों से वेदकर....** गुण और पर्याय को वेदते हैं। गुण वेदे अर्थात् उस गुण की परिणति हुई न परिणति? गुण की जो अवस्था है, उसके द्वारा अनन्त गुणों को वेदते हैं।

द्रव्य-गुण का उपभोग करते हैं। वे अपने द्रव्य को और गुण को भी भोगते हैं। यद्यपि भोगते हैं तो पर्याय को। समझ में आया? परन्तु द्रव्य-गुण की शक्ति / ताकत कितनी है, उतनी पर्याय में ख्याल में आ गयी है, इसलिए द्रव्य-गुण को भोगते हैं, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? द्रव्य-गुण अनुभव में भोगने में नहीं आते। अनुभव में तो पर्याय आती है। ज्ञान द्रव्य-गुण-पर्याय तीन काल का आता है परन्तु अनुभव में

तो पर्याय का अनुभव होता है। द्रव्य-गुण का अनुभव नहीं होता। द्रव्य-गुण तो ध्रुव त्रिकाल है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **द्रव्य-गुण का उपभोग करते हैं।** एक समय की जो पर्याय है, उसमें अनन्त गुण और गुण का पिण्ड जो द्रव्य, उसकी शक्ति का एक-एक पर्याय में सामर्थ्य में ख्याल आ गया है। ज्ञान की एक पर्याय, दर्शन की एक पर्याय, श्रद्धा की एक पर्याय, चारित्र की एक पर्याय, आनन्द की एक पर्याय। ... यह अनन्त गुण के जितने गुण हैं, उनके परिणमन की शक्ति का सामर्थ्य एक समय में आ गया है। इस अपेक्षा से कहते हैं द्रव्य-गुण को भी भगवान भोगते हैं। जितने अनन्त गुण हैं, वे एक समय की पर्याय में उनकी सत्ता, उनका प्रमेयत्व, उनका प्रभुत्व, उनका स्वच्छत्व, उनकी शक्ति का विभुत्व, उनका आनन्द द्रव्य का-गुण का, वह सब पर्याय में, ख्याल में आ गया है। इसलिए कहते हैं कि सिद्ध भगवान अपने... कथन है। परन्तु समझाते हैं, उसका व्यवहार ऐसा होता है। निमित्त भी उन्हें लोक के शिखर का होता है। वे सिद्ध हुए तो ऐसे होते हैं, ऐसा नहीं हो सकता।

षट्गुणीवृद्धिहानिरूप अर्थपर्याय तथा चरमदेह से किंचित् न्यून, प्रदेशों की आकृति-आकाररूप व्यंजनपर्याय (से युक्त है)। उसे व्यंजनपर्याय कहते हैं। षट्गुणीहानिवृद्धि। सूक्ष्म विषय है। ऐसी अर्थपर्याय प्रत्येक गुण की और कर्म, शरीर से कुछ प्रदेश का आकार थोड़ा (न्यून), वह व्यंजनपर्याय। यह दो प्रकार की पर्यायें वर्णन की। सिद्ध भगवान को अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय दो है। क्या कहा? अर्थपर्याय अर्थात् प्रदेशत्वगुण के अतिरिक्त अनन्त गुणों का पर्याय में जो अनुभव है, उसे अर्थपर्याय कहते हैं। और उस प्रदेशत्वगुण के कारण उसकी आकृति.... उसे यहाँ व्यंजनपर्याय कहते हैं। व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय सिद्ध भगवान को कही है। ...भाई! समझ में आया इसमें? मोहनभाई! क्या पढ़ते हो? ... चली गयी है।

सिद्ध भगवान परमात्मा शरीर बिना ज्ञानस्वरूपी निरंजन निराकार। परन्तु उनके अनन्तगुण जो प्रदेशत्व गुण के अतिरिक्त, उन सबकी वर्तमान पर्याय प्रगट हुई, उस पर्यायसहित हैं। वह पर्याय कोई चली नहीं जाती। और किंचित् कर्म, शरीर से उनके प्रदेश का आकार किंचित् थोड़ा न्यून, वह प्रदेशत्वगुण की व्यंजनपर्याय है। इन दोनों

पर्यायसहित भगवान विराजते हैं। समझ में आया? फिर तो जरा दृष्टान्त दिया है।

मोम गयो गलि मूसिमें जारस अंबर होय;
पुरुषाकारैं ज्ञानमय वस्तु प्रमानौ सोय॥

अर्थात् जैसे मोम अन्दर डाला हो और पुतली बनाते हैं न मिट्टी की? फिर निकाल डाले और बीच में पोल रह जाये। इसी प्रकार सिद्ध भगवान चिदानन्द मूर्ति इस देह की क्रिया को जैसे पोलाण बीच में हो, वैसे निरंजन निराकार अरूपी... रहते हैं। ऐसा सिद्ध भगवान का आकार कहते हैं।

देव को जाने तब स्वरूपानुभव होता है। यह देव अधिकार हुआ। ऐसे देव को जाने, उसे आत्मा का अनुभव होता है। अनुभवप्रकाश है न? जो देव को जाने, **तब स्वरूपानुभव होता है।** देव... कहा था। परन्तु ऐसे देव का आत्मा, अरिहन्त और सिद्ध का आत्मा, अहो! अलौकिक स्वभाव पिण्ड इस प्रकार से है। ऐसा जिसे ज्ञान होता है, उसे स्वरूप अनुभव होता है। प्रवचनसार में ८०वीं गाथा में कहा है न?

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

प्रवचनसार ८०वीं गाथा है न?

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

जो कोई आत्मा अरिहन्त सर्वज्ञ के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वयं बराबर जानकर स्वसन्मुख होकर उसका जो अनुभव करता है, उसे निश्चय क्षायिक समकित हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया? यह क्षायिक समकित की बात है इसमें। यह '**मोहो खलु जादि तस्स लयं**' उसका (मोह) लय हो जाता है। क्यों ऐसे अरिहन्त को द्रव्य-गुण-पर्याय है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था। ऐसा... मेरा स्वभाव। पहला तो द्रव्य-गुण-पर्याय से विचार करता है। फिर विचार करते हुए उसकी प्रतीति होने में स्वभावसन्मुख में जब प्रतीति करता है, तब कहते हैं कि उसे दर्शनमोह का नाश हुए बिना नहीं रहता। अर्थात् जो कोई अरिहन्त और सिद्ध के स्वरूप

को भलीभाँति जाने, पहिचाने, बराबर अन्तर में प्रतीति करे तो स्वरूप का अनुभव हुए बिना नहीं रहता। इसलिए दो अधिकार अनुभवप्रकाश ग्रन्थ में इस कारण रखा है।

अब ज्ञान का अधिकार। देखो! देव अधिकार रखकर ज्ञान की महिमा क्या है? ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, उसकी महिमा कितनी! कितना स्वभाव है, उसकी बात करते हैं।

ज्ञान, लोकालोक सकल ज्ञेय को जानता है;.... लो! देखो, यह आत्मा का ज्ञान। जानने का स्वभाव। कितनी ताकत! कितनी ताकत! कितना सामर्थ्य! लोकालोक जानने का उसका स्वभाव है। कहीं अटकने का, राग में रुकने का, किसी का कर देने का, किसी से नुकसान होने का, दूसरे को नुकसान पहुँचाने का ज्ञान में स्वभाव नहीं। समझ में आया? ज्ञान तो जानने का स्वभाव है। वह तो लोकालोक जाने या थोड़ा जाने, जानने का स्वभाव है। यहाँ तो उसकी शक्ति की बात की है।

ज्ञान, लोकालोक सकल ज्ञेय को जानता है;.... क्या कहा? यह जानने का स्वभाव लोकालोक तीन काल, तीन लोक को जाने। किसी को करे नहीं, किसी को टाले नहीं, किसी से ले नहीं और किसी को दे नहीं। जानने का स्वभाव है। देखो! ज्ञान का स्वभाव। प्रत्येक आत्मा में इस जाति का स्वभाव है। उसमें राग-द्वेष रहे हैं तो इसलिए अल्पज्ञरूप से रुका है। स्वभाव में एकाग्र होने पर अल्पज्ञता टलकर, विकार टलकर, सर्वज्ञ होने की सामर्थ्य है। इसलिए सर्वज्ञ शक्ति से शुरु किया है।

ज्ञान, लोकालोक सकल ज्ञेय को जानता है; (क्योंकि) निश्चय से जिसका जाननेरूप स्वरूप है.... वास्तव में तो उसका जानने का स्वरूप वह निश्चय है। वह ज्ञान पिण्ड ही है। चिदबिम्ब ही है। **ऐसी ज्ञान की शक्ति है।** ऐसा लिया, भाई! यह तो शक्ति ली है। समझ में आया? ज्ञान की शक्ति कोई ऐसी नहीं (कि) राग को टालना, ऐसा भी नहीं, राग को रखना, ऐसा भी नहीं। व्यवहार उत्पन्न होता है, उसे टालने-रखने की शक्ति नहीं है। ज्ञान की शक्ति तो निश्चय से जानने का है। बस जानना। राग तो अपने आप टल जाता है। उत्पन्न भी उसके कारण से उस काल में जरा होता है। ज्ञानस्वभाव। आगे लिखा, ज्ञान वही आत्मा। इसलिए आचार्यदेव ने जहाँ-तहाँ ज्ञान वह आत्मा वर्णन किया है। क्या करे? ज्ञान किसके पास से ले-दे और किसे स्वयं ले-दे?

जाननेरूप स्वरूप है, ऐसी ज्ञान की शक्ति है। ऐसा ज्ञान का सामर्थ्य शक्ति आत्मा की है। **संसार अवस्था में अज्ञानरूप हुई है,....** संसार, पर्याय दशा में वह ज्ञान की अज्ञान अर्थात् अल्पज्ञता हो गयी है। ....भगवान देह में विराजता चिदानन्द है। वह ज्ञानरूप... चिद्घन आत्मा। जैसे कलई की डली सफेदाई से भरपूर, उसी प्रकार यह आत्मा ज्ञान का बिम्ब है प्रत्येक देहदेवल में। यह हड्डियाँ जड़ है। वह तो ज्ञानस्वरूपी ही आत्मा है। लोकालोक को जानने की ताकत... शक्ति है। तथापि संसारदशा में.... अवस्था का वर्णन है। शक्ति तो ऐसी, तथापि पर्याय में (क्यों) अन्तर, तुम ऐसी बात करते हो न? **अज्ञानरूप हुई है।** अज्ञानरूप किया नहीं। किया है किसी ने अज्ञानरूप? शक्ति है? अज्ञानरूप हुई है। वह ज्ञान शक्ति त्रिकाल है, वह वर्तमान अल्पज्ञ विपरीत हुई है। कर्म से और कर्म की बात यहाँ है नहीं। पूर्ण शुद्ध अपने अपराध से अशुद्धरूप अज्ञानरूप हुई है।

तथापि निश्चय से निजशक्ति जाती नहीं है। तथापि निश्चय से जानने की शक्ति चिदानन्द का जानना... जानना... जानना... लोकालोक को जानना। ऐसी शक्ति तीन काल में जाती नहीं। देखो! यह ज्ञानगुण का भरोसा कराते हैं। तू ज्ञानगुण का भरोसा कर। तेरा स्वभाव है। जगत में अनेक प्रकार की ताकत का भरोसा करता है दूसरी चीज़ का। परन्तु इसके ज्ञान की ताकत का भरोसा नहीं करता। ज्ञान क्या करे? ज्ञान तो लोकालोक तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी उसकी ताकत है। परन्तु संसाररूपी पर्यायदशा में अज्ञानरूप है। **निश्चय से निजशक्ति जाती नहीं है।** वास्तव में उसकी जानने की शक्ति जाती नहीं है।

बादल घटाके आवरण से सूर्य का तेज नहीं जाता,.... क्या कहते हैं? बादल के घटा के कारण सूर्य का तेज नहीं जाता। चाहे जैसे बादल के आकार हों परन्तु कहीं सूर्य का तेज बादल.... समझ में आया? **उसी प्रकार ज्ञानावरण से ज्ञान नहीं जाता;....** उसी प्रकार ज्ञानावरणरूपी बादल की घटा से चिदानन्द सूर्य का नाश कभी नहीं होता। उसका ज्ञानस्वभाव तो ऐसा का ऐसा पड़ा हुआ है। यहाँ पर्याय में केवलज्ञान सिद्ध नहीं करना है, हों! यहाँ तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है। वस्तु है। वस्तु ऐसी की ऐसी है। ज्ञानशक्ति तो ध्रुव तो ऐसी की ऐसी। भले ज्ञानावरण का आवरण है। वह तो आवरण तो

निमित्तरूप है। स्वभाव को निमित्त कुछ नहीं कर सकता। पर्याय को करता नहीं तो स्वभाव को करे, यह तीन काल में नहीं बनता। ज्ञान की हीन अवस्था तो आत्मा स्वयं करे तब ज्ञानावरणीय को निमित्त कहा जाता है। यहाँ तो कहते हैं कि तेरी त्रिकाल जानने की शक्ति... परन्तु सूर्य को तेज के बादल आड़े आने पर भी सूर्य के तेज का नाश नहीं होता; इसी प्रकार शुद्ध ध्रुव ज्ञायकशक्ति तेरी है, उसका तीनों काल में नाश नहीं होता। समझ में आया? बादल जाये। सूर्य को बादल आवे तो आ कर जाये। उसी प्रकार आवरण होता है। परन्तु स्वरूप को आवरण अर्थात् स्वरूप की शक्ति का नाश हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

ज्ञान, सर्व गुणों में बड़ा गुण है;.... देखो, यह अनुभवप्रकाश में ज्ञान का अनुभव, वही मूल वस्तु है। ज्ञान का स्वसंवेदन होना, वही अनुभव और धर्म है। समयसार में भी ज्ञान का परिणमना, वह समकित है, ऐसा लिया है। ज्ञान का ज्ञानरूप होना, वह समकित। ज्ञान का ज्ञानरूप होना, वह ज्ञान। ज्ञान का ज्ञानरूप होना, वह चारित्र। समयसार में लिया है न? वह रागरूप हुआ, व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान, वह नहीं। ज्ञान सम्यक्रूप से परिणमा, वह ज्ञान समकित है। ज्ञान सम्यक्रूप से हुआ, वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। और ज्ञान में स्थिरता, वह ज्ञान समकितचारित्र है। यह कहते हैं, **ज्ञान, सर्व गुणों में बड़ा गुण है;....** लो, ज्ञान बिना दूसरी चीज़ है, ऐसा जाने कौन? अनन्त गुण आत्मा में हैं परन्तु दूसरे गुण स्व को नहीं जानते और वे गुण ज्ञान को भी नहीं जानते। अनन्त गुणों को जानने का स्वभाव उस ज्ञान में है।

ज्ञान, सर्व गुणों में बड़ा गुण है; उसमें अनन्त गुण प्रगट जानने में आते हैं। देखा, क्या कहा? अनन्त गुणों को जाननेवाला आत्मा में दर्शन-आनन्द-चारित्र, कर्ता-कर्म-करण, द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व-वस्तुत्व—ऐसे अनन्त गुण ज्ञान व्यक्तरूप से जानता है। व्यक्त अर्थात् प्रगट जानता है। यह प्रगट है, ऐसा ज्ञान जानता है। दूसरे गुणों में ऐसी ताकत नहीं है। इसलिए कहते हैं **ज्ञान, सर्व गुणों में बड़ा गुण है; उसमें अनन्त गुण प्रगट जानने में आते हैं।** बात समझ में आती है? किसकी बात चलती है यह? यह अनुभवप्रकाश। कहते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है। एक ही बात तेरी बात-लप छोड़ दे दूसरी। निमित्त की और संयोग की लप छोड़ दे। तेरी शक्ति तुझमें

पड़ी है। तेरी शक्ति तेरे उकेल में। उकेल कर, उकेल कर। उकेल समझते हो न? उकेल को क्या कहते हैं? उकेलना-निकालना। हमारी भाषा जरा अलग है। सूत का नहीं होता? कूकड़ी होती है न? सूत का कोकडा। बीच में उसे उकेलते हैं। इसी प्रकार चैतन्यशक्ति पड़ी है। उसका उकेलकर। उकेलकर अर्थात् खोल। खोल अन्दर में चैतन्यशक्ति बिम्ब पड़ा है। उसकी प्रतीति और ज्ञान की एकाग्रता द्वारा खोल। परन्तु वह ज्ञान अनन्त गुण को व्यक्त जानता है। उसकी ताकत इतनी है।

अनन्त गुण प्रगट जानने में आते हैं। क्या कहा? अभी गुण पर्याय में प्रगट नहीं हुए, तथापि अनन्त गुण ऐसे मुझमें हैं, ऐसा ज्ञान व्यक्तरूप से प्रगटरूप से ज्ञान सभी गुणों को जानता है। ज्ञान बिना ज्ञेय नहीं जाना जाता। नहीं जाना। ज्ञान बिना ज्ञेय ज्ञात नहीं होते। ज्ञान यदि न हो तो यह लकड़ी है, यह प्रकाश है, ऐसा जाना किसने? यह (जड़) प्रकाश है, उसे इस (चैतन्य) प्रकाश ने जाना है। चैतन्य का प्रकाश। इस (जड़) प्रकाश को भान नहीं कि मैं कौन हूँ। वह तो सब जड़ है। चैतन्य के प्रकाश में उसके अनन्त गुण, गुण-पर्याय और जड़ादि सब ज्ञात होता है। **ज्ञान के बिना ज्ञेय का ज्ञान नहीं होता,....** इसलिए ज्ञान का अस्तित्व और उसका सामर्थ्य सिद्ध करते हैं।

ज्ञेय के बिना जाननेयोग्य कुछ भी नहीं होता,... और यदि ज्ञेय न हो तो जाननेयोग्य कोई वस्तु रहती नहीं। ज्ञान बिना ज्ञात होता नहीं और ज्ञेय बिना ज्ञात होनेयोग्य नहीं होता। यहाँ तो आत्मा का ज्ञान ही ज्ञेय है और आत्मा के अनन्त गुण भी ज्ञेय हैं। ऐसा ज्ञान जाननेवाला है। जाननेवाला ज्ञान, उसे ज्ञान स्वयं ज्ञेय और अनन्त गुण भी ज्ञान के ज्ञेय हैं। समझ में आया?

ज्ञेय के बिना जाननेयोग्य कुछ भी नहीं होता, इसलिए ज्ञान प्रधान है;.... ज्ञान किसलिए अनन्तगुणों में मुख्य कहा? ज्ञान न हो तो सब जाने कौन? इसलिए ज्ञानगुण को प्रधान कहा है। **अनन्त गुणात्मक वस्तु तथापि ज्ञानमात्र ही है।** देखो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अनन्त गुणात्मक वस्तु है। अनन्त गुणस्वरूप वस्तु है, तथापि उसे ज्ञानमात्र कहा है। ज्ञानमात्र कह दिया। मुख्य गुण है, प्रधान गुण है, वह स्वपरप्रकाशक है, असाधारण है, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई गुण ऐसा नहीं है। एक ज्ञान यदि न हो तो इस जगत में सब अन्ध। अन्ध था, ऐसा निश्चित कौन करे? यह नहीं और अन्ध नहीं

यह निर्णय कौन करे? देखो, चैतन्य प्रकाश। एक आत्मा को जानने का स्वभाव। उसमें अनन्त गुण और स्व स्वयं ज्ञेयरूप से ज्ञात होता है।

आचार्य ने अनेक ग्रन्थों में आत्मा को ऐसा कहा है। ... ज्ञान को आत्मा ही कहा है। आचार्य ने समयसार आदि बहुत ग्रन्थों में ज्ञान अर्थात् आत्मा। यह आत्मा '**आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं**' श्लोक आता है न?

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानदन्यन्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा महोऽयं व्यवहारिणाम्॥

भगवान आत्मा ज्ञान है। फिर तो भेद करके बात की। स्वयं ज्ञानं। स्वयं ही ज्ञानस्वरूप है। अनन्त गुणात्मक होने पर भी अकेला ज्ञायक ही विभू रूप से व्यापकर रहा है। अनन्त गुणों में ज्ञान व्यापकर रहा है। इसलिए इस अपेक्षा से पूरा ज्ञान ही आत्मा कहा है।

आचार्य ने अनेक ग्रन्थों में आत्मा को.... आत्मा किसे कहा? उस ज्ञान को। **कहाँ से? कि.... 'लक्षणप्रसिद्ध्या लक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्' (लक्षण की प्रसिद्धि द्वारा लक्ष्य की प्रसिद्धि करने के लिये आत्मा का ज्ञानमात्ररूप से व्यपदेश किया जाता है।)** ज्ञान, वह लक्षण है और आत्मा, वह लक्ष्य है। अनन्त गुण ज्ञात होनेयोग्य है। लक्षण की प्रसिद्धि, लक्ष्य की प्रसिद्धि के लिये ज्ञान को आत्मा कहा है। समयसार में यह बात आती है। यह ज्ञानलक्षण प्रसिद्ध है। क्योंकि स्व-पर को जानता है। और उसकी प्रतीति के लक्ष्य से आत्मा द्रव्य, वह अनन्त गुण का पिण्ड, वह ज्ञेय प्रसिद्ध होता है। वह '**लक्षणप्रसिद्ध्या लक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्**' ज्ञान होने योग्य की प्रसिद्धि लक्षण द्वारा होती है। इसलिए ज्ञान को भगवान आचार्यों ने आत्मा, वह ज्ञान (ऐसा कहा है)।

अब दृष्टान्त देते हैं। **जैसे, मन्दिर को श्वेत कहा जाता है।** देखो! यहाँ तो सफेद होता है न सब? सफेद मन्दिर। मन्दिर सफेद है? .... वर्ण है। श्वेत मन्दिर, सफेद बगुला, सफेद मन्दिर। **मन्दिर को श्वेत कहा जाता है।** परन्तु मन्दिर में सफेद आदि अनेक गुण होते हैं। समझ में आया? ...भाई! क्या कहते हैं? मन्दिर को सफेद कहा। वह किस अपेक्षा से? ऐसे तो रंगा है, देखो न, सफेद बँगला ऐसा कहते हैं या नहीं? मोहनभाई का बँगला सफेद है, ऐसा कहा जाता है। उसमें तो बहुत रंग का है। परमाणु

भी बहुत हैं। सफेद तो मुख्यरूप से उसमें रजकण लाल, पीले, हरे तो बहुत सब हैं। परन्तु मुख्यरूप से मन्दिर श्वेत के लक्षण द्वारा मन्दिर पूरा लक्ष्य हो जाता है। इसलिए मन्दिर श्वेत कहकर **मन्दिर को श्वेत कहा जाता है। तथापि दूसरे श्वेत गुण द्वारा भासता है,....** है तो बहुत गुण मन्दिर में सफेद आदि। दूर से सफेद दिखता है। ओहो! सफेद-सफेद भाई! देखो न, स्टेशन से लोग कहते हैं कि सफेद-सफेद वहाँ सोनगढ़ में दिखता है। लोग निकले न दो-तीन कोस से दिखता है सफेद मन्दिर। वे ऐसा कहते हैं वहाँ मन्दिर है। भगवान की प्रतिमा है, इसलिए सफेद मन्दिर। वहाँ तो पाँचों वर्ण है। परन्तु बहुत गुण होने पर भी श्वेत की मुख्यता से उसे श्वेतगुण कहकर भासित होता है इसलिए मुख्यता से उस मन्दिर को श्वेत कहा। इसी प्रकार आत्मा को प्रसिद्ध ज्ञान है। सेठ! मन्दिर का दृष्टान्त दिया। सभी गुण है न उसमें। परन्तु उसे श्वेत कहा। इसी प्रकार आत्मा में तो अनन्त गुण हैं। प्रसिद्ध लक्षण ज्ञान है। देख भाई! तू जानता है या नहीं? हाँ। यह जानता है, वह आत्मा। यह जानता है, वह आत्मा। ऐसा प्रसिद्ध लक्षण आत्मा का ज्ञान है। **इसलिए ज्ञानमात्र आत्मा कहा है।** इसलिए ज्ञानमात्र मुख्य वह—ज्ञान, वही आत्मा, बस। ज्ञान वह आत्मा। उसमें अनन्त गुण आ जाते हैं।

समयसार में भी ४७ शक्ति का वर्णन किया तो ज्ञान में आ पड़ी शक्ति, ऐसा कहा है। ज्ञान में आ पड़ी, हों! ज्ञान जानते... जाता है। इसलिए ज्ञान वह आत्मा। भगवान! तू आत्मा ज्ञान ही है। तुझमें राग, द्वेष, पुण्य, पाप, काम, क्रोध वर्तता है, वह विकार है। वह तेरा स्वरूप नहीं। अकेला ज्ञान का बिम्ब चिदानन्द वह ज्ञान, ज्ञान से ही ज्ञात हो, ऐसी ताकत ज्ञान अनन्त गुण को जानता हुआ प्रगट होता है।

प्रसिद्ध लक्षण ज्ञान है इसलिए ज्ञानमात्र आत्मा कहा है। अब कहते हैं **एक-एक गुण की अनन्त शक्ति,....** आत्मा में अनन्त गुण है, उसका ज्ञान... वह ज्ञान अनन्त को जानता है। एक-एक गुण की अनन्त शक्ति, अनन्त गुण को एक-एक गुण निमित्त हो, ऐसी शक्ति। वह ज्ञानगुण से तो अनन्त गुण का निमित्त होता है न? एक गुण... सब गुण उपादान हैं। त्रिकाल गुण निमित्त। तो निमित्त की अपेक्षा से एक गुण में अनन्त गुण में निमित्त होने की ताकत है। एक-एक गुण, वह एक-एक अनन्त शक्ति। अनन्त पर्याय गुण की और एक गुण की अनन्त पर्याय। शक्ति अनन्त। और पर्याय अनन्त। समझ में

आया? देखो, यह किसकी बात चलती है? ज्ञान, वह सबको जानता है। ज्ञान सब जानता है। अनन्त गुण की ताकत को जानता है। अनन्त गुण की एक समय की पर्याय को जानता है और ज्ञान स्वयं को भी जानता है। ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा निर्णय कर तो अनुभव हुए बिना नहीं रहे। अनुभव का कारण... उस ज्ञान का अन्तर निर्णय करे कि मैं यह हूँ। उसका नाम धर्म है। दूसरा कोई धर्म नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कल की बात नहीं जानते...

पूज्य गुरुदेवश्री : कल की बात नहीं जानते, वह कल नहीं जानता, ऐसा जाना है या नहीं? नहीं जानता, ऐसा जाना है या नहीं? प्रत्यक्ष में परोक्ष कल जानोगे। कल मंगलवार है, यह आज जाना है या नहीं? कौन कहता है कि नहीं जानता? कल मंगलवार आयेगा, ऐसा जाना है या नहीं? परसों बुधवार आयेगा, यह जाना है या नहीं? कल रविवार गया, यह जाना है या नहीं? वर्तमान में जाना है कि कल रविवार था, आज सोमवार है, कल मंगलवार होगा। पूरे तीन काल को भी वर्तमान जानता है। बस अल्पज्ञ में भी यह तीन काल को जानता है। ... तीन काल तीन लोक को... जाने, ऐसी सामर्थ्य है।

बालक लो न छोटा। तो उस बालक को भी ख्याल है कि रोटी बनानी हो तो दाल... दाल तो मूँग की दाल जो पड़ी रही है। उसके ख्याल में क्या आया? कि यह दाल बनायेंगे, एक रस करेंगे, नरम करेंगे। दाल होती है न दाल? उस दाल में से रोटी होगी, ऐसा ख्याल है? वह दाल... दाल होगी। यह दाल पहले मूँग थे। उसमें से चूरा हुआ, फिर टुकड़े हुए। फिर एकरस। दाल रोटी में खाते हैं। एक काल में तीन काल का ज्ञान थोड़ा सब जीव को होता है। उसकी सामर्थ्य है परन्तु उसकी इसे प्रतीति नहीं आती।

कुम्हार। एक मटका घड़े। मिट्टी–मिट्टी। ख्याल हुआ कि मिट्टी है। मिट्टी में घड़ा होगा, ऐसा ख्याल है। इस मिट्टी में से घड़ा होगा। ....ज्ञान में ऐसा आया कि मिट्टी में से घड़ा होगा। होगा, ऐसा जाना, तो घड़ा हो तो कहे, मुझसे हुआ। जानता है कि मिट्टी से घड़ा हुआ है। परन्तु मिथ्यादृष्टि को ज्ञान के स्वभाव की प्रतीति नहीं है। समझ में

आया ? वह.... पाठ है या नहीं ? ऐसे-ऐसे होता है। ज्ञान जानता है कि ऐसा होता है, हों ! ज्ञान जानता है। यह, यह है, वह ऐसा हो जायेगा, वह जानता है। ज्ञान जानता है कि इसका आत्मस्वभाव जानने का है। ऐसा ऐसा होने का गुण ऐसा होगा, ऐसा ज्ञान जानता है। समझ में आया ? तथापि अज्ञान अभिमान छोड़ता नहीं। ज्ञान जानता है कि यह ऐसे ही चरण होंगे। एक चरण पचास हाथ दूर और एक चरण पचास हाथ दूर, ऐसा जानता है ज्ञान ? ज्ञान क्या जानता है ? एक चरण। पग समझे न ? ....दायाँ-बायाँ, दायाँ-बायाँ। ज्ञान जानता है कि ऐसी पैर की क्रिया होती है। ज्ञान पहले से जानता है, दायाँ उठने के बाद बायाँ पैर उठेगा। ऐसा जानता है। ज्ञान जानता है। उठा, उठेगा, इस प्रकार होगा। ज्ञान जानने का काम करता है। तथापि ... कहते हैं कि इस ज्ञान ने इस पैर को उठाया और यह रखा, वह मूढ़ता होती है। समझ में आया ?

ज्ञान जानता है कि यह शरीर पुद्‌गल है। ज्ञान जानता है कि इसकी पर्याय पलटने का स्वभाव है। तथापि पलटने के समय मानता है कि मुझसे पलटी ? मुझसे पलटा ? यह ज्ञान का जानने का स्वभाव वह नहीं मानता, ऐसा कहना चाहते हैं। ज्ञान का ऐसा स्वभाव है, परन्तु वह जानता और मानता नहीं। वह जानता है, मानता है, उसके ख्याल में आ जाना चाहिए कि मेरा स्वभाव तो अकेला जानने का है, दूसरा कुछ है नहीं। कहो, समझ में आया ?

एक-एक गुण की अनन्त शक्ति, अनन्त पर्यायें, एक-अनेक भेदादि सर्व को जानता है;.... क्या कहते हैं ? गुण सामान्यरूप से एक और उसकी अनेक पर्यायरूप से दूसरे को निमित्त होने की शक्तिरूप से अनेक। एक-एक गुण गुणरूप से सामान्यरूप से एक। उसकी शक्ति और पर्यायरूप से अनेक। ऐसा ज्ञान जानता है। ऐसा ज्ञान जानता है। इस जड़ वस्तुरूप से परमाणु सामान्यरूप से एक और उसके गुण और पर्यायरूप से अनेक। यह पर्याय अनेक है, होती है, ऐसा जाने। अनेक को करूँ, यह तो मिथ्या अभिमान बीच में होता है। यह जानने का स्वभाव है, ऐसा नहीं मानता। बराबर है ? देखो ! यह ज्ञान। एक-एक गुण की अनन्त शक्ति। शक्ति जाने, श्रद्धा करे, स्थिरता करे, यह गुण की स्थिरता का स्वभाव, यह गुण का-श्रद्धा का स्वभाव। यह गुण का वीर्य सामर्थ्यशक्ति को निष्पन्न रखने का स्वभाव। ऐसे गुण, गुण सामर्थ्य को जाने। यह गुण

ऐसा परिणमा, ऐसा जाने। यह जड़ की पर्याय होती है, ऐसा जाने। दूसरा उसका स्वभाव है ही नहीं। जानने पर भी उस-उस काल में उसे वह ख्याल में आ जाता है, मुझसे हुआ। समझ में आया?

कुम्हार ने मिट्टी हाथ में ली, उसे ख्याल है कि घड़ा इसमें से होगा। अब जब क्रिया घड़े की होने लगी, तब ज्ञान से जानना चाहिए कि मैंने जाना कि होगा। यह होता है। होगा, वह होता है। होगा वह होता है। परन्तु... हूँ लाओ जल्दी। तो कहते हैं कि क्या कुम्हार बिना घड़ा हुआ? कुम्हार बिना घड़ा हुआ। ...क्या घड़ा कुम्हार बिना हुआ? कुम्हार बिना हुआ। वह कुम्हार जानता है कि मिट्टी में से घड़ा होता है। मिट्टी में से कहीं दाल-भात नहीं होते। मिट्टी में से कहीं हलुवा-हलुवा। क्या कहते हैं? हलुवा। मिट्टी में से कहीं हलुवा नहीं होता। यह जानता है। ऐसा होता है। माना ऐसा होता है। परन्तु समय-समय मिट्टी क्रिया करने लगी ऐसे-ऐसे होने की। कुम्हार को अभिमान होता है कि मुझसे होता है। वह स्वभाव नहीं। वह ज्ञान का स्वभाव नहीं। ज्ञान का स्वभाव तो अनन्त गुण को, पर्याय को, शक्ति को जानने का है। ऐसा यदि निर्णय करे तो अनुभव हुए बिना न रहे। यह बात फिर विशेष करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)